राजा लक्ष्मण सिंह

॥ शकुन्तला नाटक ॥



शकुन्तला नाटक राजा लक्ष्मण सिंह

॥ शकुन्तला नाटक ॥



शकुन्तला नाटक

[महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का हिन्दी अनुवाद]

अनुवादक

राजा लक्ष्मणसिंह

राजकमल प्रकाशन

नयी दिल्ली पटना

मूल्य : रु. 15.00

पहला संस्करण : 1985

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
8, नेताजी सुभाष मार्ग,
नयी दिल्ली-110002
द्वारा प्रकाशित

रुचिका प्रिण्टर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
द्वारा मुद्रित

कलापक्ष
सुमिता चक्रवर्ती

कालिदास

महाकवि कालिदास का जन्म विक्रम संवत् से लगभग 20-25 वर्ष पूर्व (70-75 वर्ष ईसा पूर्व) हुआ था। जन्मस्थान हिमालय पर्वत का कोई ऐसा प्रदेश है जहाँ गंगा भी साथ बहती है—अनुमानतः वर्तमान गढ़वाल के अन्तर्गत टिहरी या श्रीनगर के आसपास।

पीढ़ियों से शास्त्रज्ञ कुलीन ब्राह्मण परिवार में प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा। शीघ्र ही व्याकरण-कोश, निरुक्त, कर्मकाण्ड, छन्द, ज्योतिष, दर्शन, रामायण, महाभारत, पुराण, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, नाट्यशास्त्र तथा काव्यशास्त्र का गम्भीर अध्ययन-मनन। 20-22 वर्ष की आयु में विवाह। जीविका के लिए वंशानुगत पुरोहित-वृत्ति में मन नहीं रमा। कर्म-काण्ड से विरक्तिभाव बढ़ता रहा। अतः अनथक देशाटन पर निकल पड़े। फिर उज्जयिनी-सम्राट विक्रमादित्य का राज्याश्रय।

कालिदास की कृतियाँ हैं : ऋतुसंहार, मेघदूत, मालविकाग्निमित्र, कुमार-सम्भव, अभिज्ञान शाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीय तथा रघुवंश।

राजा लक्ष्मणसिंह

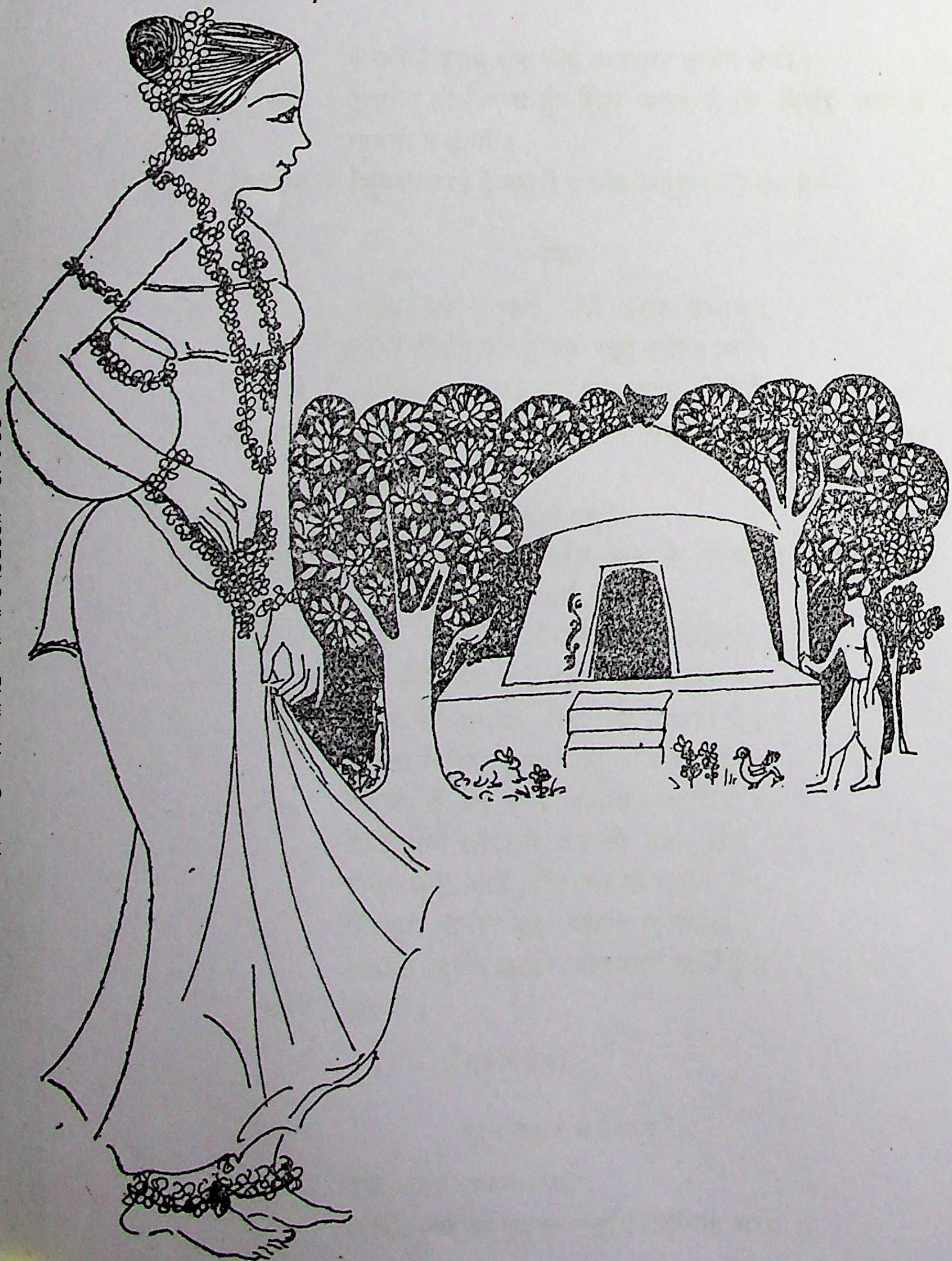
जन्म : 9 अक्टूबर, 1826 ई.। जन्मस्थान : आगरा (उत्तर प्रदेश)। 12 वर्ष की आयु तक हिन्दी, संस्कृत, फारसी की साधारण शिक्षा। यज्ञोपवीत के बाद अंग्रेजी की शिक्षा के लिए आगरा कालेज में। अंग्रेजी के साथ दूसरी भाषा के रूप में संस्कृत का अध्ययन। कालेज छोड़ने के बाद बंगला और अरबी में भी योग्यता प्राप्त की।

अध्ययन के बाद अनुवादक, तहसीलदार और डिप्टी कलेक्टर जैसे पदों पर रहे। अंग्रेजी राज-भक्ति के लिए 1870 में 'राजा' की पदवी से सम्मानित किये गये। सरकारी पदों पर रहते हुए अनेक पुस्तकों का अंग्रेजी और हिन्दी में अनुवाद। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्', 'मेघदूत' और 'रघुवंश' के हिन्दी अनुवाद के लिए हिन्दी-साहित्य में विशेष रूप से समादृत हुए। आधुनिक हिन्दी गद्य के विकास में इनकी कृतियों का उल्लेखनीय महत्त्व है।

14 जुलाई, सन् 1896 को 69 वर्ष की आयु में देहावसान।

पात्र

दुष्यन्त : हस्तिनापुर का पुरुवंशी राजा।
माढव्य : दुष्यन्त का सखा और विदूषक।
कण्व : तपोवन के ऋषियों का मुखिया और शकुन्तला का मुँहबोला बाप।
शारंगरव, शारद्वत : कण्व के चेले।
मित्रावसु : दुष्यन्त का साला और हस्तिनापुर का कोतवाल।
कुम्भिलक : शुक्रावतार तीर्थ का धींवर अर्थात् मछुवा।
जानुक, सूचक : प्यादे।
वातायन : रनवास का रखवाला।
सोमरात : राजा का पुरोहित।
करभक : दूत।
वैतक : द्वारपाल।
मातलि : इन्द्र का सारथी।
सर्वदमन : दुष्यन्त का बेटा शकुन्तला से। इसी का नाम भरत हुआ जिससे हिन्दुस्थान भारतवर्ष और भारतखण्ड कहलाता है।
कश्यप : एक प्रजापति जो मरीचि का बेटा और ब्रह्मा का पोता तथा देवदानवों का पिता था।
गालव : कश्यप का चेला।
शकुन्तला : विश्वामित्र की बेटी मेनका अप्सरा के गर्भ से और कण्व मुनि की मुँहबोली पुत्री।
प्रियम्बदा, अनसूया : शकुन्तला की सहेली।
गौतमी : एक बूढ़ी तपस्विनी।
वसुमति : दुष्यन्त की रानी।
सानुमती : एक अप्सरा और शकुन्तला की सखी।
तरलिका : वसुमती की दासी।
चतुरिका : एक दासी जो राजा के निकट रहती थी।
वेत्रवती, प्रतीहारी : रनवास की द्वारपालनी।
परभृतिका, मधुरिका : उद्यान रखनेवाली दो युवती।
सुव्रता : सर्वदमन को खिलानेवाली।
अदिती : कश्यप मुनि की स्त्री, दक्ष की बेटी और ब्रह्मा की पोती।
राजा का साथी वा ढाडी वा तपस्विनी वा यवनी।



प्रस्तावना

[रंगभूमि में ब्राह्मण आशीर्वाद देता हुआ आता है।]

छप्पय

आदि सृष्टि इक नाम नाम इक बिधिहुतबाहन।
बहुरि नाम यजमान जोति ह्वै काल बतावन॥
एक सर्वव्यापीक श्रवन गुन जात पुकारा।
भूत प्रकृति फिर एक जनति अग जग संसारा॥
गनिये जु जीव आधार पुनि अष्टमूर्ति इनतें कहत।
शंकर सहाय तुम्हरी करें नितप्रति तिनही में रहत॥

[सूत्रधार आता है।]

सूत्रधार : (नेपथ्य की ओर देखकर) अजी सिंगार कर चुकी हो तौ आओ।

[नटी आती है।]

नटी : हाँजी मैं आई कहो कौन-सी लीला करें।

सूत्रधार : यह सभा हमारे यशस्वी राजा विक्रमाजीत की है, बड़े-बड़े चतुर पण्डित इसमें विराजमान हैं, आज हमको कालिदास के बनाये अभिज्ञान-शकुन्तला नाम नये नाटक की लीला

करनी है इससे सब कोई सावधान होकर खेलो।

नटी : तुम्हारा तो प्रबन्ध ही ऐसा अच्छा है कि किसी बात में न्यूनता न होगी।

सूत्रधार : (मुसकाकर) हे चतुरी अपना सिद्धान्त तौ यह है—

दोहा

नाटक करतब भलौ रीझै सजन समाज।
नातर सीखेहू घने दुचित रहत इहि काज ॥

नटी : (नम्रता से) सच है अब क्या आज्ञा होती है।

सूत्रधार : इससे उत्तम और क्या है कि सभा के आनन्द निमित्त कुछ गान करो।

नटी : कौन-सी ऋतु का गीत गाऊँ।

सूत्रधार : ग्रीषम अभी लगी है और क्रीड़ा के योग्य भी है इससे इसी ऋतु का राग गाना चाहिये। देखो—

ध्रुपद चौताला भैरवी वा धनासिरी
कैसे नीके लागत हैं बासर ऋतु ग्रीषम के
जीवन कों सन्ध्या प्यारी सुख उमहति है।
सरिता सरोवर कुण्ड माहिँ केलि करिबें तें
तरिबें तें देह दूनो आनन्द लहति है।
घनी घनी छाया में बन की पवन लागे
झुकि झुकि आवे नींद कल ना गहति है।
त्रिबिध समीर बहै पाटलि सुगन्धिसनी
लागति शरीर आछी शीतलता रहति है॥

नटी : सच है।

[गाती है।]

राग बहार व बसन्त

कैसे भमर चुम्बन करत।
नाग केसरि कों सुअंकन रहसि रहसिहि भरत ॥

सिरस फूलन कान धरि बनयुवति मन कों हरत।
देत शोभा परम सुन्दर सरस ऋतु लखि परत ॥

सूत्रधार : धन्य है, अच्छा गाया। इससे सुननेवालों का चित्त एकाग्र होकर रंगभूमि चारों ओर चित्रालय के समान हो गयी। अब कहो किस प्रकरण से सभा के सज्जनों को प्रसन्न करें।

नटी : अजी क्या अभी नहीं कह चुके हो कि अभिज्ञान शकुन्तला नाम नये नाटक की लीला करनी होगी।

सूत्रधार : हे चतुरी भली सुध दिलाई नहीं तो मैं इस समय भूल ही गया था क्योंकि—

दोहा

लै बरबस तेरौ गयो मधुर गीत मुहि संग।
ज्यों राजा दुष्यन्त कों लायो यहै कुरंग ॥

[दोनों रंगभूमि से जाते हैं।]



अंक 1

स्थान—बन

[दुष्यन्त रथ पर चढ़ा हुआ धनुषबान लिये हरिन को खेदता सारथी सहित आता है।]

सारथी : (पहिले हरिन की ओर फिर राजा की ओर देखकर) हे आयुष्मान—

दोहा

लखि कर सायर अरु तुम्हें कर सायक सर चाप।
देखत हू खेदत मनो मृगहि पिनाकी आप॥

दुष्यन्त : हे सारथी ! यह मृग तौ हमें दूर ले आया। देखो कैसा—

चौपाई

फेर फिर सुन्दर ग्रीवा मोरत। देखन रथ पाछे जो घोरत॥
कबहुक डरपि बान मति लागे। पिछलो गात समेटत आगे॥
अधरोंथी मग दाभ गिरावत। थकित खुले मुखतें बिखरावत॥
लेत कुलांच लखो तुम अबही। धरत पाँव धरती जब तबही॥

[चकित होकर।]

अब क्या किया जाय मुझे तौ हरिन सहज दिखलाई भी नहीं देता।

सारथी : महाराज अब तक धरती ऊँची-नीची थी इससे मैंने रथ

रोक-रोककर चलाया था और इसी से कुरंग दूर निकल आया परन्तु अब भूमि एक-सी आयी इसे तुरन्त ले लेंगें ।

दुष्यन्त : तौ अब घोड़ों की रास छोड़ो ।

सारथी : जो आज्ञा (मानो रथ को भर दौड़ चलाता है) महाराज देखिये---

चौपाई

जबहि रास ढीली मैं कीनी । तानि देह अगली इन लीनी ।।
चलत कनोती लई दबाई । चमर शिखा हू हलन न पाई ।।
देखो बढ़त इन्हें तुम आगे । रज खुरतारहु संग न लागे ।।
अब तुरंग झपटत ये ऐसे । सहि न सकत मृग बेगहि जैसे ।।

दुष्यन्त : (प्रसन्न होकर) सच है ऐसे झपटते हैं कि इन्द्र और सूर्य के घोड़ों को भी जीते लेते हैं—

चौपाई

दीखति बस्तु रहीं जो छीनी । तिन अब तुरत बिपुलता लीनी ।।
जो दीखति ही बीच कटी सी । सो लखाति अब एक सटी सी ।।
सहज स्वभाव वक्र जो कोई । सरल रूप दीखति अब सोई ।।
छिन न दूर कछु छिनहु न नेरे । कारन अधिक बेग रथ केरे ।।

सारथी ! देखो अब हम इसे गिराते हैं ।

[धनुष पर बाण चढ़ाता है ।]

(नेपथ्य में) हे राजा इसे मत मारो यह आश्रम का मृग है ।

सारथी : (शब्द सुनता और देखता हुआ) महाराज बान के सामने हरिन तो आया परन्तु बीच में ये तपस्वी खड़े हैं ।

दुष्यन्त : (चकित सा होकर) अच्छा तौ घोड़ों को रोको ।

सारथी : (रथ को ठहराता है) जो आज्ञा ।

[एक तपस्वी दो चेलों समेत आता है ।]

तपस्वी : (बाँह उठाकर) हे क्षत्री ! यह मृग आश्रम का है मारने योग्य नहीं है---

दोहा

नाहिन या मृग मृदुल तन लगन जोग यह बान ।
ज्यों फूलन की राशि में उचित न धरन कृसान ।।
कहाँ दीन हरिनान क्रे अति ही कोमल प्रान ।
य तेरे तीखे कहाँ सायक बज्र समान ।।
लै उतारि या तें नृपति भलो चढ़ायो बान ।
निरदोषिनँ मारक नहीं यह तारक दुखियान ।।

दुष्यन्त : लो मैं बान उतारे लेता हूँ ।

तपस्वी : (हर्ष से) हे पुरुकुलदीपक तुम्हें ऐसा ही चाहिए--

दोहा

उचित तोहि भूपति यह जन्म पौरकुल पाय ।
जनमँगो तो घर सुवन गुनी चक्कवे आय ।।

दोनों चेले : (बाँह उठाकर) तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र हो ।

दुष्यन्त : (प्रणाम करके) ब्राह्मणवचन सिरमाथे ।

तपस्वी : हे राजा हम यज्ञ के लिए समिध लेने जाते हैं आगे मालिनी-तट पर कण्व महर्षि का आश्रम दीखता है अवकाश हो तौ वहाँ चलकर अतिथि सत्कार लीजिए ।

होत वहाँ जब देखिहो आँखिन तें महराज ।
विघ्नविना तपसीन के धर्म्मपरायन काज ।।
जानोगे नरनाह तब तुम अपने मन माँह ।
केती रच्छा करति यह मुर्वीलांछित बाँह ।।

दुष्यन्त : महर्षि आश्रम में हैं कि नहीं ।

तपस्वी : अपनी पुत्री शकुन्तला को अतिथिसत्कार की आज्ञा देकर उसी की ग्रहदशा निवारने के लिए सोमतीर्थ गये हैं ।

दुष्यन्त : अच्छा हम उस कन्या को देखेंगे और वह हमारा भक्तिभाव

महर्षि से कहेगी।

तपस्वी : सिधारिये हम भी अपने काम को जाते हैं।

[चेलों समेत जाता है।]

दुष्यन्त : हे सारथी घोड़े हाँको इस पवित्र आश्रम के दर्शन करके हम अपना जन्म सफल करें।

सारथी : जो आज्ञा।

[रथ को फिर बढ़ाता है।]

दुष्यन्त : (चारों ओर देखकर) हे सारथी जो किसी ने बतलाया भी न होता तौ भी यहाँ हम जान लेते कि तपोवन समीप है।

सारथी : महाराज ऐसे आपने क्या चिह्न देखे।

ष्यन्त : क्या तुमको चिह्न नहीं दिखाई देते? देखो—

चौपाई

रूखन तर मुनि अन्नपरचो है । शुककोटरते यह जु गिरचो है ।।
कहूँ धरीं चिक्कन शिल दीसें । इंगुदिफल जिनपै मुनि पीसें ।।
रहे हरिन हिलि के मनुषनतें । नैक न चौंकत बोल सुनन तें ।।
सोहति रेख नदी तट बाटा । बनी टपकि जल बल्कल पाटा ।।

और देखो —

चौपाई

पवन झकोरति है जलकूला। बिटप किये जिन उज्जल मला ।।
नवपल्लव दीखत धुँधराए। होम धुँआँ जिन ऊपर छाए ।।
उपवन अग्रभूमि के माहीं। कटि के दाभ रहे जहँ नाहीं ।।
चरत फिरत निधरक मृगछौना। जिनके मन शंका नैको ना ।।

सारथी : महाराज अब मैंने भी तपोवन के चिह्न देखे।

दुष्यन्त : (थोड़ी दूर चलकर) हे सारथी तपोवनवासियों के काम में कुछ विघ्न न पड़े इससे रथ यहीं ठैरा दो हम उतर लें।

सारथी : मैं रास खैंचता हूं महाराज उतर लें।

दुष्यन्त : (उतरकर) तपस्वियों के आश्रम में विनीत भेस से जाना कहा है इसलिए लो तुम ये लिये रहो (सारथी धनुष और आभूषन लेता है) और जब तक मैं तपोवन वासियों के दर्शन करके आऊँ तुम घोड़ों की पीठ ठण्डी कर लो।

सारथी : जो आज्ञा।

[जाता है।]

दुष्यन्त : (घूमकर और देखकर) यह आश्रम का द्वार है अब मैं इसमें चलता हूँ।

[सगुन देखकर।]

दोहा

शान्ति छेत्र आश्रम यहै पुन्नहि याके मांह।
कहा यहाँ फल देहिगी फरकति मेरी बाँह ।।
अचरज हूँ की बात ना फल याको यदि होइ।
होनहार कहुँ ना रुके जानत है सब कोय ।।

[नेपथ्य में]

सखियो यहाँ आओ यहाँ आओ।

दुष्यन्त : (कान लगाकर) इस फुलवाड़ी के दक्खिन ओर क्या आलाप-सा सुनायी देता है मैं भी वहीं चलूं (चारों ओर फिर-कर और देखकर) अहा ये तौ तपस्वियों की कन्या हैं जो अपने-अपने वित्त अनुसार कोई छोटी कोई बड़ी गगरी पौधे सींचने को लिए आती हैं। धन्य है कैसा मनोहर इनका दर्शन है।

दोहा

या आश्रम की तियन कौ जैसो गात अनूप।
मिलनो तैसो कठिन है रनवासन में रूप ।।

ऐसे ही बन की लता अपने गुनन प्रताप।
नित उद्यान लतान कों देति लाज सन्ताप ।।
अब इस वृक्ष की छाया में खड़ा हूँगा।

[खड़ा होकर देखता है।]

दो सखियों के साथ शकुन्तला घड़ा लिये आती है।

शकुन्तला : सखियो यहाँ आओ यहाँ आओ।

अनसूया : हे शकुन्तला मैं जानती हूँ पिता कण्व को आश्रम के बिरुवे तुझसे अधिक प्यारे होंगे नहीं तौ तुझ नयी चमेली-सी कोमलांगी को इनके सींचने की आज्ञा क्यों दे जाते।

शकुन्तला : हे अनसूया निरी पिता की आज्ञा ही नहीं मेरा भी इन वृक्षों में सहोदर का-सा स्नेह हो गया है।

[पेड़ को पानी देती है।]

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) वह कण्व की बेटी शकुन्तला क्योंकर हुई। वह ऋषि बड़ा अविवेकी होगा जिसने ऐसी सुकुमारि को आश्रम धर्म में लगाया है।

दोहा

सहज मनोहर रूप यह तनक बनावट नाहिं।
ताहि लगावन चहत मुनि कठिन तपोब्रत माहिं ।।
मोहि न दीखत है उचित उनको यहै बिचार।
मनहु कमलदलधार सों काटत छोंकर डार ।।

भला हो सो हो अब तौ रूख की ओझल से इसे निशंक बात-चीत करते देखूँगा।

[एकान्त में बैठता है।]

शकुन्तला : हे सखी अनसूया मेरी बल्कल की चोली प्रियम्बदा ने ऐसी कसकर बाँधी है कि सब अंग जकड़ा जाता है इसे तू ढीला





कर दे।

अनसूया : अच्छा करती हूँ।

[चोली ढीली करती है।]

प्रियम्बदा : (हँसकर) मुझे दोष क्यों देती है अपने जोबन को दे जो तेरे उरोजों का पल-पल पै बढ़ाता है।

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) इसने ठीक कहा।

चौपाई

ये सूक्षम गांठिन तें बांधे । वलकल बसन धरे दुहु कांधे ॥
इन में ढके न दीखत हेरे । मन्डल जुगल उरोजन केरे ॥
उमगति देह मनोहर तीकी । पावति नहिं शोभा निज नीकी ॥
छुप्यो फूल सुन्दर जिमी कोई । पीरे पातन के बिच होई ॥

अथवा माना कि बल्कल वस्त्र इसके शरीर के योग्य नहीं है फिर भी यह बात नहीं कि शोभा न देते हों क्योंकि—

दोहा

सरसिज लगत सुहावनो यदपि लियो ढकि पंक।
कारी रेख कलंक हू लसति कलाधर अंक॥
पहरे बल्कल बसन यह लागत नीकी बाल।
कहा न भूषन होइ जो रूप लिख्यो बिधि भाल॥

शकुन्तला : (आगे देखकर) सखियो देखो पवन के झोकों से बकुल के पत्ते कैसे हिलते हैं मानों वह मुझे अँगुलियों से अपने निकट बुलाता है मैं जाती हूँ इसका भी मन रख आऊँ।

[वृक्ष की ओर चलती है।]

प्रियम्बदा : सखी शकुन्तला तू छिन-भर यहीं खड़ी रह।

शकुन्तला : क्यों।

प्रियम्बदा : इसलिए कि तेरे खड़े रहने से यह बकुल का पौधा ऐसा

अच्छा लगता है मानो इससे लता लिपट रही है।

शकुन्तला : इसी से तौ तेरा नाम प्रियम्बदा हुआ है।

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) प्रियम्बदा ने बात प्यारी कही परन्तु सच्ची भी कही क्योंकि—

दोहा

अधर रुचिर पल्लव नए भुज कोमल जिमि डार।
अंगन में यौवन सुभग लसत कुसुम उनहार॥

अनसूया : हे सखी शकुन्तला देख यह नयी चमेली जिसका नाम तैनें वनज्योत्स्ना रक्खा है इस आम की कैसी स्वयम्बरबधू बनी है क्या तू इसे भूल गयी।

शकुन्तला : जो इसे भूल गयी तौ मैं अपने-आपको भी भूल जाऊँगी।

[लता के निकट जाती है।]

सखी अच्छी ऋतु में ये लता-वृक्ष मिले हैं वनज्योत्स्ना तौ अब नये फूलों से नवयौवना हुई और आम भी नयी डालियों से उपभोग के योग्य है।

[खड़ी हुई देखती है।]

प्रियम्बदा : (हँसकर) सखी अनसूया तू जानती है शकुन्तला वनज्योत्स्ना को क्यों ऐसे चाव से निहारती है।

अनसूया : न सखी मैं नहीं जानती तू बतला दे।

प्रियम्बदा : इसलिए कि जैसे वनज्योत्स्ना को अपने समान वृक्ष मिल गया है मुझे भी मेरे समान वर मिले।

[पानी का घड़ा झुकाती है।]

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) कहीं यह ऋषि की बेटी दूसरी जात की स्त्री से तो न हो। अब सन्देह को छोड़ूँ क्योंकि—

दोहा

भयो जु मेरो शुद्ध मन अभिलाषी या माहिं।
व्याहन छत्री जोग यह संशय नैकहु नाहिं॥
होत कछू सन्देह जब सज्जन के हिय आय।
अन्तःकरण प्रवृत्ति ही देति ताहि निबटाय॥

परन्तु फिर भी इसकी उत्पत्ति का ठीक-ठीक पता लगाऊँगा।

शकुन्तला : (घबड़ाकर) दई-दई पानी की बूंदों से डरा हुआ यह ढीठ भौंरा नयी चमेली को छोड़ बार-बार मेरे ही मुख पै आता है।

[भौंरे की बाधा दिखलाती है।]

दुष्यन्त : (चित्त लगाकर देखता है) इसका झींकना भी अच्छा लगता है।

दोहा

उतही में मोरति दृगन आवत अलि जिहि ओर।
सोखति है मुग्धा मनो भयमिस भृकुटि मरोर॥
और भी—

[ईर्षा-सी दिखलाकर।]

सवैय्या

दृग चोंकत कोए चलें चहुधाँ अंग बारहि बार लगावत तू।
लगि कानन गूंजत मन्द कछू मनो मर्म की बात सुनावत तू।
कर रोकति कौ अधरामृत लै रति कौ सुखसार उठावत तू।
हम खोजत जातिहि पांति मरे धनि रे धनि भोंर कहावत तू।

शकुन्तला : यह ढीठ भौंरा न मानेगा यहाँ से कहीं अन्त चलूं।

[कटाक्ष करके दूसरी ठौर खड़ी होती है।]



यहाँ भी पापी ने पीछा न छोड़ा अब क्या करूँ सखियों इस दुष्ट से मुझे बचाओ।

दोनों सखी : (मुसुकाकर) हम बचानेवाली कौन हैं राजा दुष्यन्त की दुहाई दे वही बचावेगा क्योंकि तपोवनों की रक्षा राजा के सिर होती है।

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) यह अवसर प्रकट होने का अच्छा है। मुझे डर किसका है।

[इतना कहकर।]

परन्तु इससे तो खुल जायगा कि मैं राजा हूँ अब हो सो हो इनसे बातचीत करूँगा।

शकुन्तला : (थोड़ी दूर पर खड़ी होकर) हाय यहाँ आयी अब कहाँ जाऊँ।।

दुष्यन्त : (झटपट आगे बढ़कर)—

दोहा

जब लग जगपालक बन्यो जग में नृप पुरुवंस।
सब विधि समरथ करन को दुष्ट जनन विध्वंस।
तब लग ऐसो कौन जो छोड़ि सजन की रीति।
मुग्धा मुनिकन्यान में करतु कछूक अनीति॥

[राजा को देखकर सब चकित-सी होती हैं।]

अनसूया : अजी यहाँ अनीति करनेवाला तो कोई नहीं है, हमारी यह प्यारी सखी भौंरे ने घेरी थी इससे भय खा गयी।

[शकुन्तला की ओर दीठि करती है।]

दुष्यन्त : (शकुन्तला के सम्मुख आकर)—हे सुन्दरी तेरा तपोव्रत तो सफल है।

[शकुन्तला लजाती-सी चुप खड़ी रहती है।]

अनसूया : तुम सरीके पाहुने आये, अब तपोव्रत क्यों न सफल होगा। सखी शकुन्तला तू जा कुटी से कुछ फल समेत अर्घ ले आ पाँव धोने को जल तौ यहीं है।

[पेड़ सींचने के घड़े की ओर देखती है।]

दुष्यन्त : तुम्हारे मीठे बोलों ही से अतिथिसत्कार हो गया।

प्रियम्बदा : तौ आवो पाहुने घड़ीक इस सप्तपर्ण के नीचे घनी छाया में शीतल चबूतरे पर बैठकर विश्राम ले लो।

दुष्यन्त : तुम भी तो इस काम से थक गई होगी।

अनसूया : (हौले शकुन्तला से) अतिथि के पास बैठना हमको उचित है आओ यहाँ बैठें।

[सब बैठती हैं।]

शकुन्तला : (आप-ही-आप) इस पुरुष को देख क्यों मेरे मन में ऐसी बात उपजती है जो तपोवन के योग्य नहीं।

दुष्यन्त : (एक-एक करके सबको देखता है) हे युवतियो समान वयस और समान रूप में तुम्हारी आपस की प्रीति बड़ी अच्छी लगती है।

प्रियम्बदा : (हौल-हौले अनसूया से) सखी अनसूया यह अतिथि कौन है जिसके रूप में चतुराई के साथ गम्भीरता और बोली में ऐसी मधुरता है, यह तौ कोई बड़ा प्रतापी जान पड़ता है।

अनसूया : (हौले प्रियम्बदा से) सखी मैं भी इसी सोच-विचार में हूँ। अब इससे कुछ पूछूंगी। (प्रगट) महात्मा तुम्हारे मधुर वचनों के विश्वास में आकर मेरा जी यह पूछने को चाहता है कि तुम किस राजवंश के भूषण हो? और किस देश की प्रजा को बिरह में व्याकुल छोड़ यहाँ पधारे हो? क्या कारन है जिससे तुमने अपने कोमलगात को इस कठिन तपोवन में आकर पीड़ित किया है?

शकुन्तला : (आप-ही-आप) अरे मन तू उतावला मत हो धीरज धर तेरे

हित की अनसूया ही पूछ रही है।

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) अब मैं अपने को क्या बतलाऊँ और किस भाँति इसे धोखा देकर आपको छुपाऊँ हो सो हो इससे यों कहूँगा। (प्रकट) हे ऋषिकुमारि पुरुवंशी राजा ने मुझे राज के धर्मकाज सौंप रक्खे हैं इसलिए आश्रम में आया हूँ कि देखूँ यहाँ तपस्वियों के कामों में कुछ विघ्न तौ नहीं होता।

अनसूया : महात्मा तुम्हारे पधारने से धर्म्मचारी सनाथ हुए।

[शकुन्तला कुछ लज्जित और मोहित-सी होती है।]

दोनों सखी : (शकुन्तला और दुष्यन्त के भावों को जानकर) हे शकुन्तला कदाचित आज पिताजी घर होते।

शकुन्तला : (रिस-सी होकर) तो क्या होता।

दोनों सखी : तौ इस अनोखे पाहुने को प्यारी-से-प्यारी वस्तु देकर भी कृतार्थ करते।

शकुन्तला : चलो परे हो तुम मन से गढ़कर बात कहती हो मैं तुम्हारी न सुनूंगी।

दुष्यन्त : (अनसूया और प्रियम्बदा से) हे युवतियो अब मैं भी तुम्हारी सखी का कुछ वृत्तान्त पूछता हूँ।

दोनों सखी : अजी यह भी तुम्हारा अनुग्रह है।

दुष्यन्त : कण्व महर्षि तो सदा के ब्रह्मचारी हैं फिर यह तुम्हारी सखी उनकी बेटी कैसे हुई।

अनसूया : अजी सुनो कुशिकवंशी एक बड़ा प्रतापी राजर्षि है।

दुष्यन्त : हाँ मैंने भी सुना है।

अनसूया : उसी से हमारी सखी की उत्पत्ति जानो और कण्वजी इसके पिता इसलिए कहाते हैं कि पड़ी हुई को उठा लाए थे और उन्हीं ने पाली-पनासी है।

दुष्यन्त : पड़ी हुई यह सुनकर तौ मुझे अचम्भा होता है अब इसका वृत्तान्त जड़ से सुनना चाहता हूँ।

अनसूया : अच्छा सुनो मैं कहती हूँ। जब उस राजर्षि ने गौतमी तीर

पर उग्र तप किया तो कहते हैं कि देवताओं ने कुछ शंका मान तप बिगाड़नेवाली मेनका नाम अप्सरा उनके पास भेजी।

दुष्यन्त : सच है देवता औरों की तपस्या से डर जाते हैं। भला फिर क्या हुआ।

अनसूया : बसन्त के आरम्भ में मेनका की उन्मादिनी छवि निरखते ही—

[इतना कह लज्जित होती है।]

दुष्यन्त : आगे जो कुछ हुआ हमने जान लिया। तो यह अप्सरा की बेटी है।

अनसूया : हाँ जी।

दुष्यन्त : ठीक है नहीं तो—

दोहा

कैसे ऐसे रूप की नर तें उतपति होइ।
भूतल तें निकसति कहूँ बिज्जुछटा की लोइ॥

[शकुन्तला सिर झुकाकर बैठती है।]

(आप-ही-आप) मनोकामना सिद्ध होने के लच्छन तो दिखायी दिये हैं परन्तु सखी ने बर मिलने की बात हँसकर कही थी इससे दुवधा में पड़ के मेरा मन अधीर होता है।

प्रियम्बदा : (मुसुकाती हुई पहले शकुन्तला की ओर फिर राजा की ओर देखकर) कुछ और भी पूछने की मन में दीखती है।

[शकुन्तला अँगुली से सखी को झिड़कती है।]

दुष्यन्त : तुमने भली मेरे मन की जान ली। मुझे इस अनूठे चरित के सुनने की अभी और चाह है इसलिए कुछ पूछूंगा।

प्रियम्बदा : सोच-विचार मत करो। तपस्वियों से तौ जो कोई चाहे

निधड़क पूछ सकता है।

दुष्यन्त : मैं यही पूछता हूँ कि—

सवैय्या

रतिराज के काज बिगारन कों रिपु है बन को ब्रत लोक कहे।
यह सुन्दरि प्यारी तिहारी सखी रहि है कहो कौ लग ताहि सहे॥
तजि देहिगी व्याह भए पै किधों जब पीतम आइके बांह गहे।
अपने से किधों दृगवारी मृगीन में जन्म बितावति यों ही रहे।।

प्रियम्बदा : अजी ब्याह की क्या चलायी हमारी सखी तो धर्म्म-कर्म्म में भी पराए वश है तिस पर भी पिता का संकल्प है कि समान वर मिले तौ इसे ब्याहें।

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) यह संकल्प पूरा होना तो कुछ कठिन नहीं है।

सोरठा

रे मन तजि अब सोग दूर भयो सन्देह सब।
कढ्यो धरन तब योग रत्न जो मैं जान्यो अनल॥

शकुन्तला : (रिस-सी होकर) ले अनसूया मैं जाती हूँ।

अनसूया : क्यों जाती है।

शकुन्तला : मैं गोतमी से जाकर कहूँगी कि प्रियम्बदा मुझसे अनकहनी बात कहती है।

अनसूया : हे सखी यह तौ उचित नहीं है कि तू ऐसे अनोखे पाहुने को बिना सत्कार किये छोड़ जाय—

[शकुन्तला बिना उत्तर दिये चलने को होती है।]

दुष्यन्त : (रोकने को उठता है परन्तु आप ही रुक जाता है) अहा कामी मनुष्यों के मन की बात बाहर के चिह्नों से प्रकट हो जाती है।



दोहा

मैं पाछे मुनिधीय के चह्यो चलन करि चाव।
मर्यादा आड़ी भई आगे दियो न पाँव॥
आसन तें न उठ्यो तऊ ऐसो मोहि लखात।
मानो बैठ्यो आय फिर चलि के हाथ छः सात॥

प्रियम्बदा : (शकुन्तला को रोककर) सखी यहाँ से जाने न पावेगी।

शकुन्तला : (भौंह चढ़ाकर) क्यों ?

प्रियम्बदा : क्योंकि अभी तुझे दो पौधे सींचने को और रहे हैं इस ऋण को चुका दे तब चली जाना—

[चलती हुई को बलकर रोकती है।]

दुष्यन्त : वृक्ष सींचने ही से तुम्हारी सखी थकी-सी दीखती है क्योंकि—

सवैय्या

झुकि कंध रहे लिये गागरिया भईं लाल हथेरी दुहू कर की।
उचकें कुच जानि परे अजहू बढ़ि श्वास गई छतिया धरकी॥
मुख छाय पसीनन बूंद रहीं न हिले न झुले फुलवा तरकी।
कर एक लिये बिथुरी अलकें खुलि जूरे की गांठि तरे सरकी॥
इसलिए लो यह ऋण मुझे यों चुकाने दो।

[अँगूठी देना चाहता है।]

[दुष्यन्त का नाम अँगूठी पर बाँचकर दोनों एक-दूसरी की ओर निहारती हैं।]

दुष्यन्त : इसके लेने में तुम यह संकोच मत करो कि यह राजा की वस्तु है क्योंकि मैं भी तो राजपुरुष हूँ मुझे यह राजा ही से मिली है।

प्रियम्बदा : तो महात्मा इसे अपनी अँगुली से न्यारी मत करो तुम्हारे कहने ही से ऋण चुक गया (मुसकाकर) सखी शकुन्तला इस महात्मा ने अथवा महाराज ने दया करके तुझे ऋण से छुड़ा

दिया अब तू चली जा।

शकुन्तला : (आप-ही-आप) जो अपने वश में रही तौ (प्रगट) जाने की आज्ञा देनेवाली अथवा रोकनेवाली तू कौन है ?

दुष्यन्त : (शकुन्तला की ओर देखकर आप-ही-आप) जैसा मेरा मन इससे उलझा है क्या इसका भी ऐसा ही मुझ में लगा है हो कि न हो मनोरथ सिद्ध होने के लच्छन तौ दीखते हैं क्योंकि—

दोहा

यदपि मिलावति नाहिं यह मो बातन में बात।
कान धरति इतही तऊ जब मैं कछु बतरात॥
होति न ठाढ़ी आयके मेरे सन्मुख बाल।
तदपि न दूजी ओर कहुं फेरति दीठि रसाल॥

[नेपथ्य में]

हे तपस्वियो आओ आश्रम के जीवों की रक्षा करो मृगया विहारी राजा दुष्यन्त निकट आ पहुँचा देखो—

दोहा

आले बल्कल बसन ये तपसिन डारे लाय।
आश्रम के जिन तरुन पै डारन तें लटकाय॥
तिनके ऊपर परति है उड़ि उड़ि रज खुरतार।
मानो टीड़ीदल गिरत साँझ अरुण की बार॥
और देखो—

सवैय्या

रथ देखि मतंग डर्‌यो बन कौ यह माँहि तपोबन आवत है।
पल लंगर बेलि बनाय मनो हरिनान के झुंड भगावत है॥
तपकों बनि मूरति बिघ्न किधों बलसों तरु तोरन धावत है।
मुख मोरि निहारत पाछें जबै रद कन्ध सों एक लगावत है॥

[ऋषि कुमारी कान लगाकर सुनती हैं और चौंकती हैं।]

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) अरे पुरवासियो धिक्कार है तुमको कि तुमने ढूँढ़ते-ढूँढ़ते यहाँ आकर तपोबन में विघ्न डाला। अब मुझे इनके पास जाना पड़ा।

दोनों सखी : अजी अब तौ हम इस कुलाहल से घबड़ाती हैं आज्ञा दो तौ अपनी कुटी को जायें।

दुष्यन्त : (वेग-वेग) तुम जाओ मैं भी ऐसा उपाय करूँगा जिससे तपोबन में विघ्न न होने पावे।

[सब बैठती हैं।]

दोनों सखी : हे महात्मा जैसा अतिथिसत्कार होना चाहिए हम से नहीं बना इसलिए हम यह कहते लजाती हैं कि कभी फिर भी दर्शन देना।

दुष्यन्त : नहीं-नहीं यह बात नहीं है तुम्हारे देखने ही से हमारा सत्कार हो गया।

शकुन्तला : हे अनसूया एक तो मेरे पाँव में नयी दाभ की अनी लगी है दूसरे कुरे की डाल में अंचल उलझा है नैंक ठैरो तो मैं इन से निबट लूं।

[दुष्यन्त ही की ओर देखती हुई और मिस करके ठिठकती हुई सखियों समेत जाती है।]

दुष्यन्त : अब मुझे नगर की ओर जाने की तो चाह रही नहीं इसलिए साथवालों का डेरा तपोबन के निकट ही कराऊँगा। शकुन्तला के प्रेमव्यवहार से मैं अपना छुटकारा नहीं देखता।

दोहा

तन तौ आगे चलत है मन नहि संग लगात।
उड़त पताकापाट ज्यों मारुत सोंहीं जात॥

[सब जाते हैं।]

अंक 2

स्थान—बन के समीप राजा का डेरा

[उदास रूप में माढव्य आता है ।]

माढव्य : (ऊँची श्वास लेकर) इस मृगयाशील राजा की मित्रता से हाय हम तौ बड़े दुःखी हैं दुपहरी में भी यह मृग आया वह बाराह गया उधर शार्दूल जाता है यही कहते इस बन से उसमें उस्से इसमें भागना पड़ता है ग्रीषम में कहीं वृक्ष की छाया भी इतनी नहीं मिलती जहाँ कुछ विश्राम लिया जाय। पहाड़ की नदियों में वृक्षों के पत्ते गिरकर सड़ गये हैं। प्यास लगे तौ उन्हीं का बेस्वाद पानी पीना पड़ता है और खाने को बहुधा शूल पर भुना हुआ मांस मिलता है सो भी कुसमय। घोड़े के साथ दौड़ते-दौड़ते देह ऐसी शिथिल हो जाती है कि रात में भी सोना नहीं मिलता और जो कुछ नींद आयी भी तो बड़े तड़के ही दासीजाये चिड़ीमार चलो बन को चलो बन को यह चिल्लाकर मुझे जगा देते हैं ये दुःख तौ थे ही तब तक घाव में नया घाव और लगा कि कल हमसे बिछुड़-कर राजा मृग के पीछे चलता-चलता तपस्वियों के आश्रम में पहुँचा वहाँ मेरे अभाग्य से उसकी दृष्टि एक तपस्वी की कन्या पर जिसका नाम शकुन्तला है पड़ गयी अब नगर को लौटना कैसा उसी के सोच में आज रात-भर स्वामी की आँख नहीं लगी अब क्या किया जाय जब तक राजा को नित्य कर्म्म करता हुआ देख न लूंगा न जानूं क्या गति मेरी होगी

(घूमता और देखता है) सखा तौ वह आता है और बन में फूलों की माला पहने हुए धनुषधारिन यवनी भी साथ हैं। आता तौ इधर ही है अब मैं भी अंग-भंग करके खड़ा हो जाऊँ (लाठी टेककर खड़ा होता है) चलो यों ही विश्राम सही (ऊपर कही हुई स्त्रियों समेत दुष्यन्त आता है।)

दुष्यन्त :

दोहा

प्रिया मिलन दुर्लभ तऊ लखि लखि वाके भाव।
मेरे हिय उपजत खरी मिलवेही कौ चाव ।।
पूरो यदपि भया नहीं मन चीत्यो रतिनाह।
पै संगम सुख लैन कौ रही दुहुन चित चाह ।।

[मुसुकाकर]

जब किसी की किसी से लगी हो और वह अपने मन की चाह से उसके मन की चाह अनुमान करे तौ ऐसा ही धोखा खाता है।

चौपाई

यदपि निहारि और ही ओरी। प्रेम दीठि प्यारी ने मोरी ।।
मन्द चली यदि भार नितम्बा। मनहु ललित गति करति बिलम्बा ।।
मारग रोक सखी जब लीनो। झिरकि ताहि रिस सों यदि दीनो ।।
मेरेहि काज कियो सब वा ने। अहा कामि स्वारथ पहचाने ।।

माढव्य : (जैसे खड़ा था वैसे ही खड़ा है) हे मित्र मेरे हाथ नहीं उठते इसलिए वचनों ही से आशीर्वाद देता हूँ तुम्हारी जय रहे।

दुष्यन्त : कहो सखा तुम्हारा अंग-भंग क्यों हुआ।

माढव्य : अपनी अँगुली से आँख कुचाकर आप ही पूछते हो कि आँसू क्यों आये।

दुष्यन्त : हम नहीं समझे अब फिर समझाकर कहो।

माढव्य : देखो यह बेत कुब्जों की होड़ करता है सो कहो अपने बल से करता है अथवा नदी प्रवाह से।

दुष्यन्त : नदी के प्रवाह से झुका है।

माढव्य : ऐसे ही मेरे अंग-भंग के भी तुम्हीं कारण हो।

दुष्यन्त : क्योंकर।

माढव्य : तुम तौ अब राजकाज छोड़ इस भयंकर निरजन बन में बस-कर अहेरियों के काम करोगे परन्तु मैं सत्य ही कहता हूँ कि जंगली पशुओं के पीछे दिन-प्रतिदिन भागते-भागते मेरे अंगों के जोड़ हिल गये हैं इसलिए दया करके मुझे एक दिन तौ विश्राम लेने को छोड़ जाओ।

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) यह तौ यों कहता है उधर मेरा चित्त भी ऋषिकुमारी की सुध में आखेट से निरुत्साह हो गया है क्योंकि—

सोरठा

शर चढ़ाय यह चाप, तानि सकतु नहि मृगन पै।
जिन सिखई प्रिय आप; भोरी चितवनि संग बसि ।।

माढव्य : (राजा के मुख की ओर देखकर) तुम्हारे मन में जाने क्या है मेरी बात तौ ऐसी हो गयी जैसे बन में रोना।

दुष्यन्त : (मुसुकाकर) मेरे मन में यही है कि अपने सखा की बात मानूं।

माढव्य : तुम्हारी बड़ी आयुर्बल हो।

[उठकर चलना चाहता है।]

दुष्यन्त : मित्र ठैर अभी हमको कुछ और कहना है सो सुन ले।

माढव्य : कहिये।

दुष्यन्त : जब तू विश्राम ले चुके तब हम एक ऐसे काम में तुझसे सहायता लेंगे जिसमें कुछ दौड़ना भागना न पड़ेगा।

माढव्य : क्या लड्डू खिलवाओगे?

दुष्यन्त : अभी कहता हूँ।

माढव्य : कहिये अब अच्छा अवसर है।

दुष्यन्त : कोई यहाँ है?

[द्वारपाल आता है।]

द्वारपाल : स्वामी की क्या आज्ञा है?

दुष्यन्त : रैवतक तुम सेनापति को बुला लाओ।

द्वारपाल : बहुत अच्छा (बाहर जाकर सेनापति सहित आता है) आओ महाराज कुछ आज्ञा देने के लिए तुम्हारी बाट देखते हैं।

सेनापति : (दुष्यन्त की ओर देखकर)—मृगया को दोष तौ देते हैं परन्तु हमारे स्वामी को तौ गुणदायक ही हुई है।

चौपाई

नरपति देह अधिक बलवाना। दीरघ गिरिचर नाग समाना ।।
भए क्रूर अगले अंग जाके। खेंचत बार बार धनवा के ।।
ब्यापत श्रम न पसीना लावे। धूर लगत कछु खेद न पावे ।।
भई यदपि नैंसुक दुबराई। बड़े डील नहि देति दिखाई ।।

(राजा के निकट जाकर)—स्वामी की जै हो। महाराज बन में आखेटी पशुओं के खोज देखे गये हैं आप कैसे बैठे हैं।

दुष्यन्त : इस माढव्य ने निन्दा करके मृगया में मेरा उत्साह मन्दा कर दिया है।

सेनापति : (हौले माढव्य से)—सखा तू अपनी बात पर बना रह मैं ठकुरसुहाती कहूँगा (प्रगट) महाराज इस राँडके को बकने दीजिये भला इसके तौ आप ही प्रमाण हैं कि मृगया में कितने गुण होते हैं।

सवैय्या

कछु मेद कटे अ तुन्दि घटे छटि के तन धावन जोग बने।
चितवृत्ति पशून की जानि परे भय क्रोध में लेति लपेट घने ।।

अति कीरति है धनुधारिन की चलतो यदि बान तें बेझो हने ।
मृगया तें भलीं न विनोद कोई ताहि दोषन माहि बृथा ही गने ।।

माढव्य : (रिस से) अरे राजा ने तौ मृगया छोड़ दी तुझे क्या हुआ है जो ऐसी बातें कहकर फिर उत्साह दिलाता है तू बन में बहुत दौड़ता फिरता है कहीं मनुष्य की नाक के लोभी किसी बूढ़े रीछ के मुँह में न पड़ जाय ।

दुष्यन्त : हे सेनापति यह आश्रम का समीप है इसलिए हम आखेट की बड़ाई करने में तुम्हारा पक्ष नहीं ले सकते आज तौ—

चौपाई

भैंसन देहु करन रंगरेली । सींग पखारि कुन्ड बिच केली ।।
हरिन यूथ रूखन तर आवें । बैठ जुगार करत सुख पावें ।।
शूकर वृंद डहर में जाईं । खोद निडर मोथाजर खाईं ।।
शिथिल प्रत्यञ्चा धनुष हमारो । आज त्यागि श्रम होइ सुखारो ।।

सेनापति : जो इच्छा महाराज की ।

दुष्यन्त : आगे जो आखेटी लोग वढ़ गये हैं उन्हें लौटा लो और सेनावालों को बरज दें कि तपोवन में कुछ विघ्न न डालें क्योंकि—-

दोहा

शान्ति भाव तपसीन में यद्यपि होत प्रधान ।
गुप्ततेज राखत तऊ अन्तर अग्नि समान ।।
ज्यों शीतल रविकान्तमणि छूवति करति न दाह ।
भानु तेज तें त्रास लहि उगलति ज्वाल प्रवाह ।।

सेनापति : जो आज्ञा स्वामी की ।

माढव्य : चल जा दासीजाय तेरा उत्साह दिलाना निष्फल हुआ ।

[सेनापति जाता है ।]

दुष्यन्त : (दासियों की ओर देखकर) तुम भी अपना आखेट भेष उतार डालो और हे रैवतक तू अपने काम पर सावधान रह ।

सब सेवक : जो आज्ञा महाराज की ।

[सब जाते हैं ।]

माढव्य : इन मक्खियों को तौ आपने भला यहाँ से दूर किया अब सुन्दर वृक्षों की छाया में इस शिला पर बैठिये मैं भी सुख से विश्राम लूंगा ।

दुष्यन्त : आगे तुही चल ।

माढव्य : आइये ।

[दोनों जाकर बैठते हैं ।]

दुष्यन्त : अरे माढव्य तुझे आँखों का क्या फल मिला जबकि तैंने देखने योग्य पदार्थों में सबसे उत्तम को तौ देखा ही नहीं ।

माढव्य : क्या मेरे सामने महाराज नित नहीं रहते ।

दुष्यन्त : अरे अपने को तौ सभी अच्छा जानते हैं परन्तु मैं तुझसे उस शकुन्तला के मद्धे कहता हूँ जो आश्रम की शोभा है ।

माढव्य : (आप-ही-आप) मैं इसको इस विषय में कुछ कहने का अवसर न दूंगा (प्रगट) हे मित्र जो वह तपसी की बेटी है तौ तुम्हारे ब्याहने योग्य नहीं फिर उसके देखने से क्या प्रयोजन ।

दुष्यन्त : हे सखा पुरुवंशियों का मन अलीन वस्तु पर कभी नहीं जाता ।

कुण्डलिया

मुनि दुहिता है नाम कों जनी अपसरा माय ।
जनतहि जननी छोड़िके गई बिना पय प्याय ।।
गई बिना पय प्याय भूमि पै डारि अकेली ।
परी डार तें छूटि आक पै मनहु चमेली ।।
मुनि निकसे तहँ आय गोद लै लीनी सुहिता ।
पाली पिता कहाय नाव यातें मुनि दुहिता ।।

माढव्य : (हँसकर) जैसे किसी की रुचि छुहारों से हटकर अमली पर लगे तुम रनवास के स्त्री रत्नों को छोड़ उस पर आसक्त हुए हो।

दुष्यन्त : हे सखा जो तू उसे एक बेर देखले तौ फिर ऐसी न कहे।

माढव्य : जब तुमको भी उसके देखने से अचम्भा हुआ है तौ वह निस्सदेह रूपवती होगी।

दुष्यन्त : (मुसुकाकर) बहुत क्या कहूँ।

सवैय्या

पहले लिखि चित्र के माहि किधों वाहि प्राण अधार बिरंच दयो।
धरि के सुखमा चित कै सबही एक रूप अनूप बनाय लयो ॥
जब सोचत हूँ बिधि कौ बल मैं अरु वा तिय की रंग ढंग ठयो।
तब भासति है मन माहि यही कमला कौ नयौ अवतार भयो ॥

माढव्य : जो ऐसी है तौ उसके आगे सब रूपवती निरादर हैं।

दुष्यन्त : मेरे चित में तौ ऐसी ही है।

वह तौ निरदोषित रूप तिया विन सूँघ्यो मनो कोई फूल नयो।
नवपल्लव कै नखहू न लग्यो कोई रत्न किधों जो बिध्यो न गयो ॥
फल पुन्न को है अखंड किधों मधु है सद कै बिन स्वाद लयो।
बिधना मति मोहि न जानि परे ताहि चाहत कौन के भागि दयो ॥

माढव्य : तौ तुम उसे वेग ब्याह लो नहीं तौ अखण्ड पुन्न का फल किसी हिंगोट का तेल लगे हुए चिकने सिरवाले जोगी के हाथ पड़ जायगा।

दुष्यन्त : मित्र वह परवश है और उसका पिता घर नहीं है।

माढव्य : भला तुम में उसका अनुराग कैसा जान पड़ा।

दुष्यन्त : सुन तपस्वियों की कन्या स्वभाव की सकुचीली होती हैं तौ भी—

दोहा

मेरे सनमुख होत ही फेरी दीठि सुजान।
फिर काहू मिस तें करी मधुर मधुर मुसकान ॥



प्रगट प्रीति नहिं कर सकी अधिक सताई लाज ।
तौहू गुप्त रह्यो नहीं मदनदेव की काज ।।

माढव्य : और क्या देखते ही तुम्हारी गोद में आ बैठती ।

दुष्यन्त : फिर जब चलने लगी तौ लाज में भी उस सुन्दरी का प्रीति भाव मुझ में दिखायी दिया ।

दोहा

चलि अबला कछु दूर लों ठैरि गई मग माहिं ।
कहति दाभ कांटो लग्यो यदपि दाभ तहँ नाहिं ।
उरझ्यो काहू रूख में कहूँ न बलकल चीर ।
सुरझावन मिस के तऊ ठिठकी मोरि शरीर ।।

माढव्य : तौ अब यहाँ खाने-पीने की सामग्री इकट्ठी कर लो क्योंकि मैं देखता हूँ तुमने तपोवन को उपवन बना लिया ।

दुष्यन्त : हे सखा किसी-किसी तपस्वी ने मुझे पहचान लिया है अब विचार तौ किस मिस से फिर आश्रम में जाऊँ ।

माढव्य : और क्या मिस चाहिए तुम तौ राजा हो ।

दुष्यन्त : राजा हैं तौ क्या ?

माढव्य : तपस्वियों से कहो कि बन के अन्न से हमारा छठा भाग लाओ ।

दुष्यन्त : हे मूर्ख ये तपस्वी तौ हमको और ही भाग ऐसा देते हैं जिसके आगे रत्नों का ढेर भी तुच्छ है देख—

दोहा

और वर्ण तें लेत नृप सो धन बिनसन जोग ।
छटो अंश तप कौ अमर देत जु तपसी लोग ।।

[नेपथ्य में]

अहा हमारा तौ मनोरथ सिद्ध हो गया ।

दुष्यन्त : (कान लगाकर) यह तौ धीर शान्त बोल तपस्वियों



का-सा है।

[द्वारपाल आता है।]

द्वारपाल : स्वामी की जय हो हे देव दो ऋषिकुमार द्वार पर आये हैं।

दुष्यन्त : तुरन्त लाओ।

द्वारपाल : अभी लाता हूँ (बाहर जाता है और ऋषिकुमारों को साथ लिये फिर आता है) इधर आओ इधर आओ।

[दोनों राजा की ओर देखते हैं।]

पहला ऋषिकुमार : अहा इस राजा का शरीर यद्यपि जाजुल्यामान है परन्तु हमको फिर भी इसमें अत्यन्त विश्वास होता है क्यों न हो यह भी तौ ऋषियों ही की भाँति रहता है।

चौपाई

त्यागि नगर याहू ने दीनो। आश्रम आय वास अब लीनो।
करि पालन परजा अपनी कौ। संचय करत यहू तपही कौ।
ऋषि पदवी पावन अति नीकी। पहुँची सुरपुर याहु जती की।
चारन द्वन्द ताहि तहँ गावें। आगे राज शब्द एक लावें॥

दूसरा : हे गौतम क्या यही इन्द्र का सखा दुष्यन्त है।

पहला : हाँ यही है।

सीमा श्याम बारिनिधि जाकी। ता भुमि कों भोगत एकाकी।
तौ अचरज यामें कछु नाहीं। नगर द्वार अरगल सम बाहीं॥
जाके एक चढ़े धनवा में। दूजे कठिन बज्र मघवा में।
धरत आस सब देव समाजा। असुरन कों रन जीतन काजा॥

दोनों : (राजा के निकट जाकर) महाराज की जय हो।

दुष्यन्त : (आसन से उठकर) तुम दोनों को प्रणाम है।

दोनों : (फूल भेंट करते हैं) तुम्हारा कल्याण हो।

दुष्यन्त : (प्रणाम करके भेंट लेता है) क्या आज्ञा है।

दोनों : महाराज आश्रमवासियों ने यह जानकर कि तुम यहीं ठैरे हो कुछ प्रार्थना की है।

दुष्यन्त : क्या कृपा की है?

दोनों : हमारे गुरु कण्व ऋषि यहाँ नहीं हैं इससे राक्षस आकर यज्ञ में विघ्न डालते हैं सो तुम सारथी समेत कुछ रात इस आश्रम को सनाथ करो।

दुष्यन्त : यह तौ मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया।

माढव्य : (सैन देकर) अब तौ मनोकामना पूरी हुई।

दुष्यन्त : (मुसकाकर) रैवतक तू सारथी को आज्ञा दे कि रथ लावे और मेरा धनुषबान भी लेता आवे।

द्वारपाल : जो आज्ञा।

[बाहर जाता है।]

दोनों : (हर्ष से)—

दोहा

चलत लोक पुरखान की करत तिनहि के काज।
उचित तुम्हें यातें यही धर्म्मध्वज महराज॥
सस्नागत दुखियान कों दैन अभय कौ दान।
नित कंकन बाँधे रहत पुरबंसी यजमान॥

दुष्यन्त : (प्रणाम करके) तुम चलो मैं भी तुम्हारे पीछे आया।

दोनों : सदा जय रहे।

[दोनों जाते हैं।]

दुष्यन्त : माढव्य क्या तेरे मन में भी शकुन्तला देखने की चाह है।

माढव्य : पहले तौ बड़ी उमंग थी परन्तु जबसे राक्षसों का नाम सुना तबसे नहीं रहा।

दुष्यन्त : डरता क्यों है हमारे पास रहना।

माढव्य : तौ तुम्हारा चक्र-रक्षित बनूंगा।

[द्वारपाल आता है।]

द्वारपाल : महाराज रथ आ गया है और माजी की कुछ आज्ञा लेकर करभक दूत भी नगर से आया है।

दुष्यन्त : (सत्कार करके) क्या माता का पठाया आया है ?

द्वारपाल : हाँ प्रभू।

दुष्यन्त : तौ उसे लाओ।

द्वारपाल : जो आज्ञा (बाहर जाता है और फिर करभक समेत आता है) महाराज इधर। सन्मुख जा।

करभक : स्वामी की जय हो ! देव, माजी ने आज्ञा की है कि आज से चौथे दिन पुत्र पिण्डपालन उपास होगा। उस समय तुम चिरंजीव भी अवश्य आकर हमको प्रसन्न करना।

दुष्यन्त : इधर तौ तपस्वियों का काम उधर बड़ों की आज्ञा इसमें से कोई उल्लंघन योग्य नहीं है अब क्या करना चाहिए।

माढव्य : (हँसकर) अब त्रिशंकु बनकर यहीं ठैरो।

दुष्यन्त : इस समय मैं सचमुच व्याकुल हूँ।

दोहा

दूर दूर पै काज द्वै परे एक संग आय।
ऊकन जोग न एक हू इनमें परत लखाय ॥
याही तें मेरो हियो सोवत भयो अधीर।
मनहु शिला तें रुकि बह्यो द्वैधा सरिता नीर ॥

(सोचकर) हे सखा तुमसे भी तौ माजी पुत्र कहकर बोली हैं इससे तुही नगर को जा और हमारी ओर से माजी से यह कहकर कि हमको तपस्वियों का कारज करना अवश्य है तू वही काम कीजो जो पुत्र करता है।

माढव्य : यह तौ सब करूँगा परन्तु तुम कहीं ऐसा तो नहीं समझे कि मैं राक्षसों से डर गया।

दुष्यन्त : (मुसुकाकर) नहीं नहीं तू तो बड़ा ब्राह्मण है ऐसा हम क्यों समझेंगे।

माढव्य : तौ अब मुझे राजा के छोटे भाई की भाँति जाना चाहिए।

दुष्यन्त : हाँ, इसलिए यह सब भीड़ भी तेरे साथ भेजता हूँ। तपोबन से विघ्न का दूर ही रहना अच्छा है।

माढव्य : (ऊँचा सिर करके) तौ मैं अब युवराज हो गया।

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) यह बड़ा ही चपल है कहीं हमारी लगन का वृत्तान्त रनवास में न जा कहे इसलिए इससे यों कहूँ (माढव्य का हाथ पकड़कर प्रगट) हे मित्र ! मैं केवल ऋषियों का बड़प्पन रखने इस तपोवन में जाता हूँ। तू यह निश्चय जान कि तपस्वी की कन्या शकुन्तला में मेरी चाह नहीं है भला देख तो--

दोहा

कह हम अरु वह तिय कहाँ पली जु हरिनिन संग।
जानति है दुखिया कहा कैसो मदन प्रसंग ॥
मैं तोसों वाकी कछू करी सखा बतरानि।
सो हाँसी की बात ही साँचि न लीजो मानि ॥

माढव्य : सत्य है।

[सब जाते हैं।]

तीसरे अंक का विष्कम्भ

स्थान—तपोवन

[ऋत्विज ब्राह्मण का शिष्य हाथ में कुश लिये आता है।]

अहा दुष्यन्त बड़ा प्रतापी राजा है जिसके चरन बन में आते ही हमारे सब धर्म्म कार्य्य निर्विघ्न होने लगे।

दोहा

बान चढ़ावन की कहा करि मुरवी टंकार।
हरत दूर ही तें विघन मनहु चाप हुँकार।।

अब चलूँ बेदी पर बिछाने के लिए ये दाभ मुझे ऋत्विज ब्राह्मणों को देने हैं। (फिरकर और इधर-उधर देखकर) हे प्रियम्वदा तू किसके लिए उसीर का लेप और नालसहित कमल पत्ते लिये जाती है। (कान लगाकर) क्या कहा धूप लगने से शकुन्तला बहुत व्याकुल हो गयी है। उसके शरीर पर लगान को ठण्डाई लिये जाती हूँ। अच्छा तौ जा बहुत जतन से उपाय करना क्योंकि वह कन्या गुरु कण्व का प्राण है मैं भी अभी गौतमी के हाथ यज्ञ मन्त्र का शान्ति जल भेजता हूँ।

[जाता है।]

अंक 3

[आसक्त मनुष्यों की-सी दशा में दुष्यन्त आता है।]

दुष्यन्त : (ऊँची श्वास लेकर)—

दोहा

जानत हूँ तपबल बड़ो अरु परबस वह तीय।
तदपि न वासों हटि सके मेरो व्याकुल हीय।।
फिरत न पीछे नीर ज्यों भूमि निमानी जाय।
सो गति मो मन की भई कीजै कौन उपाय।।

हे कुसुमायुध तू और चन्द्रमा हम प्रेमीजनों को विश्वासघाती हो।

शिखरनी

हिमांशू चन्दा सों कुसुमशर तोसों कहत क्यों।।
नहीं साँचे दोऊ इन गुनन मीसे जनन कों।।
खरी छोड़े ज्वाला वह किरिन पाला संग धरो।।
तुहू वज्राकारी निज सुमन के बानन करे।।

हे कन्दर्प तुझे मेरे ऊपर क्यों दया नहीं आती। (मदनबाधा-सी देखता हुआ) तेरे कुसुमबान की अनी ऐसे पैनी क्यों हुई। हाँ जाना।

दोहा

अग्नि अजों हरकोप को दहकति है तो माहि।
जैसे बड़वा समुद्र में संशय नैकहु नाहिं।।
जो हेतु न होतो यही तौ कैसे तू आप।
भसम भयो मोसे जनन देतो एतौ ताप।।
फिर भी—

दोहा

मनबाधा यद्यपि करत तू मकरध्वज नित्त।
कल न देत एकहु घरी व्याकुल राखत चित्त।।
तदपि गिनूँ तेरो यहू बहुत बड़ो उपकार।
वा मदलोचनि कारने जो तू करत प्रहार।।
हे पंचशर, मैंने तेरी बहुत स्तुति की परन्तु तू मुझ पर दयालु न हुआ।

शिखरनी

बृथा तोकों मैंने बल नियम सौ करि दियो।
कियो मेरो योंही सब रतिपती निष्फल गयो।।
यही सोहे तू लै अब धनुष खेचे करन लों।
करे बेझो मेरो हिय शर चलावे जतन सों।।
(खेदित-सा इधर फिरता है) हाय जब यज्ञ समाप्त होगा ऋषियों से बिदा होकर मैं कहाँ अपने दुखी जीव को ले जाऊँगा। (गहरी साँस लेकर) प्रिया के दर्शन बिना कोई मुझे धीरज देनेवाला नहीं इसलिए उसी को ढूंढूँ। (सूरज को देखकर) इस कठिन दुपहरी को शकुन्तला कहीं मालिनी तट की लता कुंजों में सखियों के साथ बिताती होगी अब वहीं चलूँ। (फिरकर और देखकर) इन नयी लताओं में होकर प्यारी अभी गयी होगी। मुझे ऐसा दीखता है क्योंकि—

दोहा

जिन डारन तें मम प्रिया लुने फूल अरु पात।
सूख्यो दूध न छत भर्‌यो तिनकौ अजों लखात।।
(पवन का लगना प्रकट करके) अहा यह स्थान कैसा सुहावना लगता है।

दोहा

लिये कमलरज गन्धि अरु कन मालिनी तरंग।
आइ पवन लागति भली मदन दहे मम अंग।।
(फिरकर और नीचे देखकर) बेतों से घिरे हुए इसी लता मण्डल में प्यारी होगी क्योंकि—

दोहा

दीखत पंडू रेत में नए खोज या द्वार।
आगे उठि पीछे धसकि रहे नितम्बन भार।।
भला इन बृक्षों में देखूँ तौ। (फिरकर और हर्ष सहित देखकर) अहा अब मेरे नेत्र सफल हुए मनभावती वह फूलों से सजी हुई पटिया पर पौढ़ी है और दोनों सखी सेवा में खड़ी हैं। अब हो सो हो इनके मते की बातें सुनूंगा।

[खड़ा होकर देखता है।]

[दोनों सखियाँ समेत शकुन्तला दीखती है।]

दोनों सखी : (प्यार से पंखा झलकर) हे सखी शकुन्तला हम कमल के पत्तों से ब्यार करती हैं सो तेरे शरीर को अच्छा लगता है कि नहीं।

शकुन्तला : सखियो मेरे ऊपर क्यों पंखा झलती हो।

[दोनों सखी दुखी-सी होकर एक-दूसरी को देखती हैं।]



दुष्यन्त : (आप-ही-आप) शकुन्तला तो बेचैन-सी दीखती है। (सोचकर) क्या इसे धूप लगी है अथवा बेचैनी का कारण वही है जो मेरे मन में भासता (अभिलाषा दिखाता हुआ) अब सन्देह को छोड़ूं।

सवैय्या

लगि लेप उसीर उरोज रह्यो कर एक सढील मृनालवला।
कुछ पीड़ित तौ तन है प्रिय कौ कमनीय तऊ जिमि चन्द्रकला॥
मकरध्वज की अरु ग्रीषम की दुहु ताप कहावति तुल्यबला।
परि ग्रीषम त्रास करे न कहूँ मनभावन ऐसी नई अबला॥

प्रियम्बदा : (हौले अनसूया से) हे अनसूया जब शकुन्तला की दृष्टि उस राजर्षि पर पड़ी तभी से आसक्त-सी हो गयी है कहीं वही रोग तौ नही है।

अनसूया : (हौले प्रियम्बदा से) मेरे मन में भी यही शंका होती है। भला इससे पूछना तौ चाहिए (प्रगट) हे सखी तेरी पीड़ा बहुत बढ़ गयी है इससे मैं तुझसे कुछ पूछना चाहती हूँ।

शकुन्तला : (सेज से थोड़ी उठकर) क्या पूछना चाहती है।

अनसूया : सखी मदन व्यौहारों को तो हम क्या जानें परन्तु जैसी दशा लगन लगे मनुष्यों की कहानियों में सुनी है वैसी तेरी दीखती है तू कह दे तुझे क्या रोग है क्योंकि मरम जाने बिना कोई औषधि भी नहीं कर सकता।

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) अनसूया को भी मेरी ही-सी शंका है।

शकुन्तला : (आप-ही-आप) मेरी लगन तौ बहुत कठिन है इनसे सहज क्योंकर कह सकूंगी।

प्रियम्बदा : हे शकुन्तला यह अच्छा कहती है तू अपने रोग को थोड़ा मत जान दिन-पर-दिन दुबली होती जाती है अब केवल स्वरूप-ही-स्वरूप रह गया है।

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) प्रियम्बदा ने सत्य कहा।

चौपाई

आनन छीन कपोल भयो है। उर न उरोज कठोर रह्यो है।।
दूबर लंग अधिक दुबराई। झुके कन्ध मुखपै पियराई।।
करुना जोग दृगन अति प्यारी। मदन बिथित दीखति यह नारी।।
मनहु माधवी लता सताई। पातसोख मारुत दुख दाई।।

शकुन्तला : सखी तुम से न कहूँगी किस्से कहूँगी तुम्हीं को दुख दूँगी।

प्रियम्बदा : प्यारी इसी से हम हठ करके पूछती हैं कि हितूजनों के बताने से दुख घटता है।

दुष्यन्त : (आप-ही-आप)—

सवैय्या

सुखदुख को साझिनि साथिनियाँ मिलि पूछति हैं दुखरा तियकौ।
अब देहिगी साँच बताय तिन्हें यह कारन रोग सबै जिय कौ।।
मुहि चाव सों बारहि बार लख्यो मुख मोरि मनों मुखरा पिय कौ।
अकुलात तऊ धों कहूँगी कहा मिटि धीरज मेरे गयो हिय कौ।।

शकुन्तला : हे सखी जब से मेरे नेत्रों के सामने तपोबन का रखवाला वह राजर्षि आया तभी से।

[इतना कह लज्जित होकर चुप रह जाती है।]

दोनों सखी : सखी कहे जा।

शकुन्तला : तब से मेरा मन उसके बस होकर इस दशा को पहुँचा है।

दुष्यन्त : (हर्ष से आप-ही-आप) जो मैं सुना चाहता था सोई सुन लिया।

दोहा

मनसिज ही दीनों इतौ मेरे मन सन्ताप।
ताही न करिके दया फिर दुख मेट्यो आप।।
ग्रीषम बीतें दिवस ज्यों कारे बादर लाय।
मेटत दुख प्रानीन के पहले देह तपाय।।

शकुन्तला : जो तुम उचित समझो तौ ऐसा उपाय करो जिससे वह राजर्षि मुझ पर दया करे नहीं तौ मुझे तिलाञ्जली दो।

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) इस बचन से तो मेरा सब संशय मिट गया।

प्रियम्बदा : (हौले अनसुया से) हे सखी इसकी प्रेमबिथा इतनी बढ़ गयी है कि अब उपाय में बिलम्ब न होना चाहिए और जिस पर यह मोहित है वह तौ पुरुवंश का भूषण है ही इसलिए अभिलाषा भी इसकी बड़ाई के योग्य है।

अनसूया : तू सच कहती है।

प्रियम्बदा : (प्रगट) सखी धन्य है तेरा अनुराग क्यों न हो समुद्र को छोड़कर महानदी कहाँ जा सकती है और आम के बिना नये पत्तोंवाली माधवी को कौन ले सकता है।

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) जो विशाखा की तरय्याँ चन्द्रकला की बड़ाई करें तो क्या अचम्भा है।

अनसूया : फिर क्या उपाय है जिससे प्यारी का मनोरथ तुरन्त सिद्ध हो और कोई जाने भी नहीं।

प्रियम्बदा : मनोरथ का तुरन्त सिद्ध होना तौ कठिन नहीं है परन्तु उपाय गुप्त रहना कठिन है।

अनसूया : क्योंकर।

प्रियम्बदा : जबसे उस राजर्षि ने इसे स्नेह की दृष्टि से देखा है क्या वह रात-रात-भर जागने से दुर्बल नहीं हो गया है।

दुष्यन्त : (अपना शरीर देखकर) सच है हो तौ ऐसा ही गया हूँ क्योंकि—

दोहा

निशि निशि आँसू ताप के परत भुजा पै आय।
मानिक या भुजबन्द के फीके भए बनाय।।
बार बार ऊँचो करूँ खिसलि खिसलि यह जात।
मुरवी हू की गूँथि पै नैक नहीं ठैरात।।

प्रियम्बदा : (सोचकर) हे सखी अनसूया मेरे विचार में यह आता है कि

इससे एक प्रीतिपत्र लिखाऊँ और फूलों में रखकर देवता के प्रसादमिस राजा के पास पहुँचा दूं।

अनसूया : सखी यह उपाय तो बहुत उत्तम है शकुन्तला क्या कहती है।

शकुन्तला : इसका परिणाम मुझे सोच लेने दो।

प्रियम्बदा : सखी तू सोचकर अपने ऊपर लगता हुआ कोई ललित-सा छन्द बना दे।

शकुन्तला : छन्द तौ बना दूँगी परन्तु मेरा हृदय काँपता है कि कहीं वह पत्र को लौटाकर मेरा अपमान न कर दे।

दुष्यन्त : (प्रसन्न होकर आप-ही-आप)—

दोहा

जासो तू संका करति मतिक अनादर देइ।
अभिलाषी तो दरस को ठाढ़ो लखि किन लेइ ॥
कमला मिले कि ना मिले ताहि चहत जो कोइ।
पै जाकों कमला चहै सो दुरलभ क्यों होइ ॥

दोनों सखी : हे अपने गुणों के निन्दक भला बता तौ ऐसा मूर्ख कौन होगा जो शरीर का ताप मिटानेवाली शरद चाँदनी को रोकने के लिए सिर पर कपड़ा ताने।

शकुन्तला : (मुसुकाकर) लो मैं तुम्हारा कहना करती हूँ।

[सोचती है।]

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) प्यारी को लोचन-भर देखने का यह अवसर अच्छा है।

दोहा

छन्द रचति सोचति वरन भृकुटी एक चढ़ाय।
पुलक कपोलन तें रही मो में प्रीति जनाय ॥

शकुन्तला : सखी गीत तो मैंने बना लिया परन्तु लिखने की सामग्री कहाँ है।

प्रियम्बदा : इस लुकोदर समान कोमल कमल के पत्ते पर नखों से लिख दे।

शकुन्तला : (पत्ते पर गीत लिखकर) सखियो सुनो इस छन्द में अर्थ बना कि न बना।

दोनों सखी : अच्छा बाँच।

शकुन्तला : (बाँचती है)—

दोहा

तो मन की जानति नहीं अहो मीत बेपीर।
पै मो मन कों करत नित मनमथ अधिक अधीर ॥

सोरठा

लाग्यो तोसों नेह रैन दिना कल ना परे।
काम तपावत देह अभिलाषा तुहि मिलन की ॥

दुष्यन्त : (झटपट आगे बढ़कर)—

दोहा

केवल तोहि तपावही मदन अहो सुकुमारि।
भस्म करत पै मो हियो तू चित देखि बिचार ॥

सोरठा

भानु मन्द करदेत केवल गंधि कमोदिनिहि।
पै शशिमंडल स्वेत होत प्रात के दरस तें ॥

[दुष्यन्त का प्रवेश]

दोनों सखी : (देखकर हर्ष सहित उठती हैं) बड़े आनन्द की बात है कि मनोरथ तुरन्त सिद्ध हो गया।

[शकुन्तला आदर देने को उठती है।]

दुष्यन्त : रहो रहो मेरे लिये क्यों परिश्रम करती हो।

दोहा

सुमनसेज तें लगि रहे सुन्दरि तेरे गात।
सुरभितहू मिडि के भए मृदुल नाल जलजात।।
खेदित से दीखत खरे कठिन ताप के रोग।
आदर देवे काज ये नाहिं उठन के जोग।।

अनसूया : अजी इस चट्टान पर विराजिए जहाँ शकुन्तला बैठी है।

[राजा उठता है शकुन्तला लजाती है।]

प्रियम्बदा : तुम दोनों को एक-दूसरे में अनुराग तौ प्रत्यक्ष है परन्तु फिर भी सखी का प्यार मुझसे कुछ कहलाया चाहता है।

दुष्यन्त : कहना है सो कहो क्योंकि जो बात कहने को मन में आयी हो और कही न जाय वह पीछे दुख देती है।

प्रियम्बदा : प्रजा में जो किसी को कुछ विपत्ति हो उसको राजा दूर करे ऐसा तुम्हारा धर्म कहा है।

दुष्यन्त : सत्य है इससे बड़ा कोई धर्म राजा के लिए नहीं है।

प्रियम्बदा : हमारी इस प्यारी सखी को कन्दर्प बली ने तुम्हारी लगन में इस दशा को पहुँचा दिया अब तुम्हीं इस योग्य हो कि कृपा करके इसके प्राण रक्खो।

दुष्यन्त : हे सुन्दरी प्रार्थना तौ दोनों ओर समान है परन्तु अनुग्रह सब भाँति मुझी पर है।

शकुन्तला : (प्रियम्बदा की ओर देखकर) राजर्षि को क्यों यहाँ बिलमाती हो इनका मन रनवास में धरा होगा।

दुष्यन्त : हे सुन्दरी—

दोहा

तेरे ही बस मो हियो अरु काहू बस नाहिं।
बसति तुही मदलोचनी मेरे हिय के माहिं।
जो यातें औरहि कछू शंका उपजी तोहि।
तौ मनमथ बानन हन्यो फेरि हनति तू मोहि।।

अनसूया : (हँसकर) हे सज्जन हम सुनती हैं कि राजा बहुत रानियों के प्यारे होते हैं परन्तु तुम हमारी सखी का ऐसा निरवाह करना जिससे इसके बान्धवों को क्लेश न हो।

दुष्यन्त : हे सुन्दरी ज्यादा क्या कहूँ।

दोहा

होंय बड़े रनवास मम द्वै कुलभूषन नारि।
सागर रसना बसुमती अरु यह सखी तुम्हारि।।

दोनों सखी : तौ यह हमारी चिन्ता मिटी।

प्रियम्बदा : (अनसूया की ओर देखकर) हे अनसूया देख इधर दीठि किये हुए हरिणा का बच्चा कैसा अपनी माँ को ढूँढ़ता फिरता है चलो उसे मिला दें।

[दोनों चलती हैं।]

शकुन्तला : सखियो मैं अकेली रही जाती हूँ तुममें से एक तौ यहाँ आओ।

दोनों सखी : (मुसुकाकर) अकेली क्यों है जो देसदुनी का रखवाला है सो तौ तेरे पास बैठा है।

[दोनों जाती हैं।]

शकुन्तला : क्या दोनों ही गयीं।

दुष्यन्त : प्यारी चिन्ता मत कर क्या मैं तेरा टहलुआ पास नहीं हूँ ?

शिखरनी

कहे प्यारी तोपै कमल बिजना सीतल झलूं।
लगे सीरी सीरी पवन तन कौ आलस मिटे।।
कहे लैके अंकें चरन प्रिय के जावक रचे।
मलूं जैसे-जैसे सुखद करभोरू तुहि जचे।।

शकुन्तला : मैं बड़ों का अपराध न लूंगी।

[उठकर चलने को होती है।]

दुष्यन्त : हे सुन्दरी अभी दुपहरी कड़ी है और तेरे शरीर की यह दशा है।

दोहा

कुसुम सेज तजि धूप में लैके कोमल गात।
कहाँ जायगी उर धरे जलजातन के पात।।

[हाथ पकड़कर बिठाता है।]

शकुन्तला : हे पुरुवंशी नीत का पालन करो मदन की सताई हुई भी मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ।

दुष्यन्त : हे कामिनी गुरुजनों का कुछ भय मत कर क्योंकि कण्व धर्म्म को जानते हैं यह बातें सुनकर तुझे दोष न देंगे।

सोरठा

बहुत राजऋषि धीय गईं व्याहि गन्धर्व बिधि।
हरषि मातु पितु हीय तिनहू कों आदर दियो।।

शकुन्तला : अँचल छोड़ दो मैं अपनी सखियों से फिर कुछ पूछ आऊँ।

दुष्यन्त : अच्छा छोड़ूँगा।

शकुन्तला : कब।

दुष्यन्त :

दोहा

ज्यों कोमल सद फूलतें मधुकर अवसर पाय।
मन्द मन्द मधु लेत है मन की तपति बुझाय।।
तैसे ही करिलेहुँ जब मैं प्यारी सुखदान।
तेरे अधर अछत कौ सहज सहज रस पान।।

[शकुन्तला का मुख उठाता है और वह बरजती है।]



(नेपथ्य में) हे चकवी रात आ गयी अब तू अपने नाह से न्यारी हो।

शकुन्तला : (कान लगाकर और सटपटाकर) हे पौरव निश्चय मेरे शरीर का वृत्तान्त पूछने भगवती गौतमी इधर ही आती हैं तुम वृक्ष की आड़ में हो जाओ।

दुष्यन्त : अच्छा यही करूँगा।

[वृक्ष की ओट में छिपता है।]

[हाथ में कमण्डल लिये गौतमी दोनों सखियों सहित आती है।]

दोनों सखी : भगवती इधर आओ इधर आओ।

गौतमी : (शकुन्तला के निकट जाकर) बेटी अभी तेरे शरीर का ताप कुछ घटा कि नहीं।

शकुन्तला : हाँ कुछ घटा है।

गौतमी : इस कुश के जल से तेरा शरीर निरोग हो जायगा। (सिर पै पानी के छींटे देती है) हे बेटी अब सन्ध्या हुई चल कुटी को चलें।

[जाती है।]

शकुन्तला : (आप-ही-आप) हे मन जब सुख लेने का अवसर सन्मुख आया तब तौ तू अभागा कायर हो गया अब प्यारे के विरह सन्ताप में तेरी क्या गति होगी (थोड़ी दूर चलकर खड़ी हो जाती है।) (प्रगट) दुःख हरनेवाली लता अब मैं तुझसे न्यारी हूँ परन्तु आशा रखती हूँ कि कभी फिर भी तुझे देखूंगी।

[दुखी-सी सबके साथ जाती है।]

दुष्यन्त : (पहले स्थान पर जाकर और गहरी श्वास लेकर) अहा मनोरथ सिद्ध होने में अनेक विघ्न पड़ते हैं।

दोहा

बार-बार अंगुरीन तें लीने होठ दुराय।
नाहिं नाहिं मीठो बचन बोली मुख मुरकाय॥
ता छिन मृगनैनी बदन मैं कछु लियो उठाय।
पै अधरामृत पान कों समरथ भयो न हाय॥

अब कहाँ जाऊँ इसी लतामण्डल में जिसे प्यारी क्रीड़ा करके छोड़ गयी है घड़ी एक आसन जमाऊँगा।

[चारों ओर देखकर।]

चौपाई

यह प्यारी की है सिलशय्या। गातन अंकित फूलन मय्या।
प्रेमपत्र यह है कुम्हिलाता। नखतें लिख्यो कमल के पाता॥
यह मृनालकंकन है सोई। गिरचो प्रिया के कर तें जोई।
इनहिं लखत मैं सकत न त्यागी। सूनिहु बेत कुंज दुरभागी॥

(नेपथ्य में) हे राजा—

दोहा

सन्ध्या पूजन होत ही राक्षसगन की छाँह।
परति आय चहुँ ओर तें प्रजुलित बेदिन माँह॥
साँझ समय के मेघ सम असित बरन अरु पीत।
देति त्रास तपसीन कों करति महाभयभीत॥

दुष्यन्त : हे तपस्वियों घबड़ाओ मत मैं आया।

[जाता है।]

चौथे अंक का विष्कम्भ

स्थान—तपोवन

[दोनों सखी फूल बीनती हुई आती हैं।]

अनसूया : हे प्रियम्बदा शकुन्तला का गंधर्व ब्याह हुआ और पति भी उसी के समान मिला इससे तौ मेरे मन को आनन्द हुआ परन्तु फिर भी चिन्ता न मिटी।

प्रियम्बदा : क्यों ?

अनसूया : इसलिए कि आज वह राजर्षि तपस्वियों का यज्ञ पूरा कराकर अपने नगर को बिदा हुआ है रनवास में पहुँचकर जाने यहाँ के वृत्तान्त को सुध रक्खेगा कि नहीं।

प्रियम्बदा : इसकी कुछ चिन्ता मतकर ऐसे विशेष रूप के लोग स्वभाव के खोटे नहीं होते अब चिन्ता है तौ यह है कि न जाने पिता कण्व इस वृत्तान्त को सुनकर क्या कहेंगे।

अनसूया : मेरे मन में तौ यह भासती है कि वे इस वृत्तान्त से प्रसन्न होंगे।

प्रियम्बदा : क्यों।

अनसूया : इसलिए कि बड़ों का मुख्य संकल्प यही होता है कि कन्या गुणवान को दी जाय और जो दैव आप ही ऐसा बर मिला दे तौ उनको चाहिए कि सहज कृतार्थ हुए।

प्रियम्बदा : सत्य है। (फूलों की टोकरी देखकर) हे सखी जितने फूल पूजा को चाहिए उतने तो हम बीन चुकीं।

अनसूया : शकुन्तला से सुहागदेवी की पूजा भी तौ करानी है।

प्रियम्बदा : अच्छा।

[दोनों फूल बिनती हैं।]

(नेपथ्य में) यह मैं हूँ मैं।

अनसूया : (कान लगाकर) हे सखी यह तौ किसी अतिथि का-सा बोल है।

प्रियम्बदा : क्या शकुन्तला कुटी पर नहीं है (आप-ही-आप) है तौ परन्तु आज उसका चित्त ठिकाने नहीं है।

अनसूया : चलो इतने फूल ही बहुत हैं।

[चलती हैं।]

(नेपथ्य में) हे अतिथि का निरादर करनेवाली—

चौपाई

तपोधनी मैं जात कहायो। तैं नहिं जान्यो सन्मुख आयो ॥
जाके ध्यान एकटक लागी। सुधि बुधि तैं सबही की त्यागी ॥
सो जन युवति भूल तुहहि जाई। आवे सुरति न कोटि उपाई ॥
जैसे मदमाती नर कोई। प्रथम बात कहि भूल्यो होई ॥

प्रियम्बदा : हाय-हाय बुरा हुआ किसी तपस्वी का अपराध बेसुधी में शकुन्तला से बन गया (आगे देखकर) यह तौ कोई वैसा नहीं महाक्रोधी दुर्वासा ऋषि है जो शाप देकर रिस का भरा डिगमिगाते पैरों वेग-वेग जाता है भस्म कर देने की सामर्थ दो ही में है एक अग्नि में दूसरे इस ब्राह्मण में।

अनसूया : हे प्रियम्बदा तू जा पैरों पड़कर जैसे बने इसे मना ला तब तक मैं अर्घ जल संजोती हूँ।

प्रियम्बदा : अच्छा।

[जाती है।]

अनसूया : (थोड़ी दूर चलकर गिर पड़ती है) हाय उतावली होकर मैंने

फूलों की टोकरी हाथ से गिरायी ।

[फूल बिनने लगती है ।]

[प्रियम्बदा आती है ।]

प्रियम्बदा : हे सखी इस मर्हषि का स्वभाव बड़ा टेढ़ा है उसे कौन सीधा कर सकता परन्तु मैंने कुछ कर लिया ।

अनसूया : इसका थोड़ा मान जाना भी बहुत है तू यह बतला कि कैसे मनाया ।

प्रियम्बदा : जब लौटने को नट गया तब मैंने बिनती की कि हे महापुरुष इस कन्या का यह पहला ही अपराध है और यह तप के प्रभाव को जानती न थी ऐसा विचार कर इसे क्षमा करो ।

अनसूया : फिर क्या हुआ ?

प्रियम्बदा : तब बोला कि मेरा वचन झूठा नहीं होता परन्तु सुध दिलाने-वाली मुँदरी के देखने पर शाप मिट जायेगा यह कहकर अन्तर्ध्यान हो गया ।

अनसूया : तौ अभी कुछ आशा है क्योंकि जब वह राजर्षि चलने को हुआ अपनी मुँदरी जिसमें उसका नाम खुदा था शकुन्तला की अँगुली में सुध के लिए पहना गया वही मुँदरी हमारी सखी को इस शाप का सहज उपाय होगी ।

प्रियम्बदा : सखी चलो अब देवकारज से निपट आवें । (इधर-उधर फिरकर और देखकर) हे अनसूया देख बाएँ कर पर कपोल धरे प्यारी सखी कैसी चित्र लिखी-सी बन रही है । पति के वियोग में इसे तौ सामने आये की क्या अपनी भी सुध नहीं है ।

अनसूया : हे प्रियम्बदा यह शाप की बात हम ही तुम जानें शकुन्तला को मत सुनाओ क्योंकि उसका स्वभाव कोमल बहुत है ।

प्रियम्बदा : ऐसा कौन होगा जो नवमल्लिका की लहलही लता पर तत्ता पानी छिड़के ।

[दोनों जाती हैं ।]

अंक 4

स्थान—आश्रम का समीप

[कण्व का एक शिष्य सोते से उठकर आता है ।]

शिष्य : महात्मा कण्व अभी परदेश से आये हैं और मुझे आज्ञा दी है कि देख आ रात कितनी रही है इसलिए मैं बाहर जाता हूँ । (इधर-उधर फिरकर आकाश की ओर देखता हुआ ।) अहा यह तौ सबेरा हो गया ।

चौपाई

एक ओर प्रभु औषधिराई । अस्ताचल शिखरन कों जाई ।
दूजी ओर पद्मिनी नायक । निकस्यो अरुण सहित तमघायक ।।
अस्तउदै सिखरावत इनकौ । एक संग द्वै तेजमइन कौ ।।
धीरज धर्म तजें नर नाहीं । निजनिज संपति बिपतिन माहीं ।।

चौपाई

अस्ताचल पहुँच्यो ससि जाई । दई कुमुदनी छबि बिसराई ।।
दृगन देति अब आनन्द नाहीं । आय रही छबि सुमरन माहीं ।।
जिन तिरियन के पीतम प्यारे । देश छोड़ि परदेश सिधारे ।
तिन के दुख नहिं जात कहेहू । अबलन पै क्यों जात सहेहू ।।

[अनसूया पट को झटके से उठाकर आती है ।]

अनसूया : (आप-ही-आप) यद्यपि मैं संसार की बातों में अजान हूँ तौ भी इतना मैंने जान लिया कि उस राजा ने शकुन्तला के साथ अनर्थ किया ।

शिष्य : अब होम का समय हुआ गुरुजी से चलकर कहना चाहिए ।

[बाहर जाता है ।]

अनसूया : मैं उठी भी तौ क्या करूँगी हाथ-पैर तौ कहना ही नहीं करते अब निर्दई कामदेव का मनोरथ पूरा हुआ जिसने हमारी भोली सखी को एक मिथ्यावादी के बस में डाल इस दशा को पहुँचाया है अथवा यह भूल दुर्वासा के शाप का फल है नहीं तौ क्योंकर हो सकता कि वह राजर्षि ऐसे वचन देकर अब तक संदेश का पत्र भी न भेजता । अब सुध दिलाने को अँगूठी उसके पास भेजनी पड़ी परन्तु इन दुखिया तपस्वियों में किससे कहूँ कि अँगूठी ले जा जो मैं यह भी जानती कि शकुन्तला का दोष है तौ भी पिता कण्व से जो अभी तीर्थ कर के आये हैं न कह सकती कि शकुन्तला का ब्याह राजा दुष्यन्त से हो गया और उसे गर्भ भी है अब क्या करना चाहिए ।

[प्रियम्बदा हँसती हुई आती है ।]

प्रियम्बदा : सखी वेग चल शकुन्तला की बिदा का उपचार करें ।

अनसूया : तू क्या सच कहती है ?

प्रियम्बदा : सुन अभी मैं शकुन्तला से पूछने गयी थी कि रात में चैन से सोई कि नहीं ।

अनसूया : तब ।

प्रियम्बदा : वह तौ लाज की मारी सिर झुकाए खड़ी थी इतने में पिता कण्व आये और उसे छाती से लगाकर यह शुभ वचन बोले कि हे पुत्री बड़े मंगल की बात है कि आज जब ब्राह्मण ने आहुति दी तब यद्यपि यज्ञ के धुएँ से उसकी दृष्टि धुँधली हो रही थी आहुति अग्नि ही में पड़ी । हे बेटी जैसे योग्य शिष्य



को विद्या देने से मन को खेद नहीं होता ऐसे आज मैं तुझे बिना खेद तेरे भरता के पास ऋषियों के साथ भेज दूँगा ।

अनसूया : हे सखी जो बातें मुनि के पीछे हुईं सो उनसे किसने कह दीं।

प्रियम्बदा : जब मुनि यज्ञ स्थान के निकट पहुँचे तब आकाशवाणी छन्द में कह गयी ।

अनसूया : (चकित होकर) क्या कह गयी ?

प्रियम्बदा : सखी सुन आकाशवाणी ने यह कहा—

दोहा

सभी गरभ में अनल ज्यों त्यों तेरी धिय सन्त ।
धारित तेज दियो जु नृप प्रजा हेत दुष्यन्त ॥

अनसूया : (प्रियम्बदा को भेंटकर) हे सखी यह सुनकर तौ मुझे बड़ा आनन्द हुआ बड़ा सुख हुआ परन्तु जब सोचती हूँ कि शकुन्तला आज ही जायगी तौ सुख और दुख समान हो जाते हैं।

प्रियम्बदा : वह सुखी रहेगी इससे हमको भी कुछ शोक न करना चाहिए ।

अनसूया : मैंने इसी दिन को उस नारियल में जो आम के पेड़ पर लटकता है नित नई नाग केसर की माला रक्खी थी तू इसे उतार ले तब तक मैं मृगलोचन और तीर्थ की मिट्टी और दूब मंगल उपचार की सामग्री ले आऊँ ।

प्रियम्बदा : बहुत अच्छा ।

[अनसूया जाती है और प्रियम्बदा माला उतारती है ।]

[नेपथ्य में]

हे गौतमी शारंगरव और शारद्वत मिश्रों से कह दो कि शकुन्तला के पहुँचाने को जाना होगा ।

प्रियम्बदा : (कान लगाकर) अनसूया विलम्ब मत कर हस्तिनापुर जाने वाले ऋषि बुलाये जाते हैं।

[अनसूया हाथ में सामग्री लिये आती है ।]

अनसूया : आओ सखी हम भी चलें ।

[दोनों इधर-उधर फिरती हैं ।]

प्रियम्बदा : (देखकर) वह देख शकुन्तला सूरज निकलते ही शिर स्नान करके बैठी है और बहुत-सी तपस्विनी हाथ में तंदुल लिये आशीष दे रही हैं चलो हम भी वहीं चलें ।

[जाती हैं ।]

[ऊपर कही हुई भाँति शकुन्तला बैठी दीखती है ।]

एक तपस्विनी : (शकुन्तला की ओर देखकर) हे बेटी तू पति से मान पाकर महारानी हो ।

दूसरी : तू सूरबीर की माता हो ।

तीसरी : तू पति की प्यारी हो ।

[आशीर्वाद देकर सब जाती हैं गौतमी रहती है ।]

दोनों सखी : (शकुन्तला के निकट जाकर) तेरा स्नान मंगलकारी हो ।

शकुन्तला : (आदर से) सखियो भली आई यहाँ बैठो ।

दोनों सखी : (मंगल पात्र हाथ में लिये हुए बैठती हैं) सखी तू चलने को उपस्थित हो । आ पहले हम नेगचार का उबटन कर दें ।

शकुन्तला : हे प्यारियो तुम्हारे हाथ से फिर सिंगार मिलना मुझे दुर्लभ हो जायगा इसलिए जो कुछ तुम आज मेरे लिए करोगी मैं बहुत करके मानूँगी ।

[आँसू गिराती है ।]

दोनों सखी : सखी ऐसे मंगल समय रोना उचित नहीं है ।

[आँसू पोंछकर वस्त्र पहनाती हैं ।]

प्रियम्वदा : हे सखी तेरे इस सुन्दर अंग को अच्छे-अच्छे गहने कपड़े चाहिये थे ये आश्रम के फूल पत्ते तौ अनहोते को हैं अच्छे नहीं लगते ।

[दो ऋषिकुमार वस्त्राभूषण लिये आते हैं ।]

दोनों ऋषिकुमार : भगवती को ये वस्त्राभूषण पहनाओ ।

[देखकर सब चकित होती हैं ।]

गौतमी : हे पुत्र नारद ! ये कहाँ से आये ?

पहला ऋषिकुमार : पिता कण्व के प्रभाव से ।

गौतमी : क्या मन में विचारते ही प्राप्त हो गये ।

दूसरा ऋषिकुमार : नहीं सुनो जब महात्मा कश्यप की आज्ञा हमको हुई कि शकुन्तला के निमित्त लता-वृक्षों से फूल ले आओ तब तुरन्त—

चौपाई

काहू तरवर दीन्ह उतारी । मंगलीक ससि सम सितसारी ॥
काहू दियो लाख रस सोई । जासों सुरत महावर होई ॥
औरन बहुविधि भूषन भीने । बन देविन के हाथन दीने ॥
ते निकसे पहुँचे लों हाथा । होड़ करत नवसाखन साथा ॥

प्रियम्वदा : (शकुन्तला को देखकर) बनदेवियों से वस्त्राभरण मिलना यह सगुन तुझे ससुरे में राजलक्ष्मी का दाता होगा ।

[शकुन्तला लजाती है ।]

पहला ऋषिकुमार : हे गौतम ! आओ-आओ गुरुजी स्नान करके आ गये चलो उनसे बनदेवियों के सत्कार का वृत्तान्त कह दें ।

दूसरा : अच्छा ।

[दोनों जाते हैं ।]

दोनों सखी : हे सखी हम आभूषण को क्या जानें परन्तु चित्र-विद्या के बल से तेरे अंगों में पहना देंगी ।

शकुन्तला : मैं तुम्हारी चतुराई जानती हूँ ।

[दोनों सिंगार करती हैं ।]

[कण्व स्नान किये हुए आते हैं ।]

कण्व :

दोहा

आज शकुन्तला जायगी मन मेरो अकुलात ।
रुकि आँसू गदगद गिरा आँखिन कछु न लखात ।
मोसे बनवासीन जो इतौ सतावत मोह ।
तौ गेही कैसे सहें दुहिता प्रथम बिछोह ॥

[इधर-उधर टहलते हैं ।]

दोनों सखी : हे शकुन्तला तेरा सिंगार हो चुका अब कपड़े का जोड़ा पहन ले ।

[शकुन्तला उठकर साड़ी पहनती है ।]

गौतमी : हे पुत्री आनन्द के आँसू भरे नेत्रों से तुझे देखने गुरुजी आते हैं तू इन्हें आदर से ले ।

शकुन्तला : (उठकर लज्जा से) पिता मैं नमस्कार करती हूँ ।

कण्व : हे बेटी—

दोहा

तू पति की आदरवती हूजो ता घर जाय ।
जैसे सरमिष्ठा भई नृप ययाति बर पाय ॥

सोरठा

छत्रपती पुर नाम जैसो सुत वाने जन्यो।
चक्रवती अभिराम तैसो ही जनियो तुहू ।।

गौतमी : हे महात्मा यह तौ आशीर्वाद क्या है बरदान है।

कण्व : आ बेटी तुरन्त आहूति दी हुई अग्नियों की प्रदक्षिणा कर ले।

[सब प्रदक्षिणा करती हैं।]

शिखरनी

चहूँधा वेदी के विधिवत रची हैं अगिनि ये।
बिछीं दर्भा नेरे अरु प्रजुल सोहैं समदि ले ।।
नसावें प्रानी के अघ हविरगन्धी धुवन तें।
यही ज्वाला तेरे दुरित सब बेटी परिहरें ।।
अब पुत्री तू शुभ घड़ी में बिदा हो। (चारों ओर देखकर)
संग जानेवाले मिश्र कहाँ हैं।

[शारंगरव और शारद्वत आते हैं।]

शिष्य : मुनिजी हम ये हैं।

कण्व : अपनी बहन को गैल बताओ।

शारंगरव : आओ भगवती इधर आओ।

[सब चलते हैं।]

कण्व : हे तपोवन के सहवासी वृक्षो—

दोहा

पाछे पीवति नीर जो पहले तुम कों प्याय।
फूल पात तोरति नहीं गहनेहू के चाय ।।
जब तुम फूलन के दिवस आवत हैं सुखदान।
फूली अंग समाति नहीं उत्सव करति महान ।।

सो यह जाति शकुन्तला आज पिया के गेह।
आज्ञा देहु पयान की तुम सब सहित सनेह ।।

[कोयल का बोल जत्ताकर।]

यह देखो—

दोहा

आज्ञा देत पयान की, ये तरवर बनराय।
बनवासिन के बन्धुजन, कौयल शब्द सुनाय ।।

(नेपथ्य में)—

चौपाई

पंथ होय याकों सुखकारी । पवन मन्द अरु अभितमचारी ।।
ठौर ठौर सरिता सर आवें । हरित कमलिनी छाय सुहावें ।।
तरवर शीतल छाँह घनेरे । मेटनहार ताप रवि केरे ।।
मृदुल भूमि पग पग सुखदाई । मनहु कमल रज दीन्ह बिछाई ।।

[सब कान लगाकर अचम्भे से सुनते हैं।]

गौतमी : हे पुत्री ! तेरी हितकारिन तपोबन की देवियाँ तुझे आशीर्वाद देती हैं तू भी इनको प्रणाम कर।

शकुन्तला : (नमस्कार करके प्रियम्बदा से हौले-हौले) हे प्रियम्बदा ! आर्यपुत्र से फिर मिलने का तौ मुझे बड़ा चाव है परन्तु आश्रम को छोड़ते हुए दुःख के मारे पाँव आगे नहीं पड़ते।

प्रियम्बदा : अकेली तुझी को दुःख नहीं है ज्यों-ज्यों तेरे वियोग का समय निकट आता है तपोवन भी उदास-सा दीखता है।

दोहा

लेत न मुख में घास मृग मोर तजत नृत जात।
आँसू जिमि डारत लता पीरे पीरे पात ।।

शकुन्तला : (सुध करती हुई-सी) पिता मैं इस माधवी लता से भी मिल लूँ इसमें मेरा बहन का-सा स्नेह है।

कण्व : बेटी मैं भी जानता हूँ तेरा इसमें सहोदर का-सा प्यार है। माधवी लता यह है दाहिनी ओर।

शकुन्तला : (लता के निकट जाकर) हे बनज्योत्स्ना यद्यपि तू आम से लिपट रही है तौ भी इन शाखारूपी बाहों से मुझे मिल ले क्योंकि अब मैं तुझसे दूर जा पड़ूँगी।

कण्व :

दोहा

जैसो पति तेरे लिए मैं संकलप्यो आप।
तैसो तैं पाया सुता अपने पुन्न-प्रताप॥
मिली भली नवमल्लिका यहू आम संग आय।
आज भयो तुम दुहुन तें मैं निश्चिन्त उपाय॥

हे बेटी विलम्ब मत कर अब बिदा हो।

शकुन्तला : (दोनों सखियों से) हे सखियो इसे मैं तुम्हारे हाथ सौंपती हूँ।

दोनों सखी : (आँसू गिराती हैं) हमें किसके हाथ सौंपती है।

कण्व : हे अनसूया अब रोना त्यागो तुम्हें तौ चाहिए कि शकुन्तला को धीरज बँधाओ।

[सब चलते हैं।]

शकुन्तला : हे पिताजी यह कुटी के निकट चरनेवाली ग्याभन हरिनी क्षेम कुशल से जने तुम किसी के हाथों यह मंगल समाचार मुझे कहला भेजना भूल मत जाना।

कण्व : अच्छा न भूलूँगा।

शकुन्तला : (कुछ चलकर और फिरकर) यह कौन है जो मेरा अंचल नहीं छोड़ता।

[पीछे फिरकर देखती है।]

कण्व :

सवैय्या

कहुँ दाभन तें मुख जायौ छिद्यो जब तू दुहिता लखि पावतही।
अपने करतें तिन घावन पैं तुही तेल हिंगोट लगावत ही॥
जिहि पालन के हित धान समा नित मूठहि मूठ खवावतही।
मृगछोना सो क्यों पग तेरे तजे जाहि पूत लों लाड़ लड़ावतही॥

शकुन्तला : अरे छोना मुझ सहवास छोड़ती हुई के पीछे तू क्यों आता है तेरी माँ तुझे जनते ही छोड़ मरी थी तब मैंने तेरा पालन किया अब मेरे पीछे पिताजी तुझे पालेंगे तू लौट जा।

[आँसू डालती हुई चलती है।]

कण्व :

दोहा

दृढ़ करि आँसू रोकि तू आगे देखन हेत।
उन्नत बरुनी दृगन ये काम देन नहिं देत॥
ऊँची-नीची भूमि में गिरे न ठोकर खाय।
सावधान पग दीजिये या मारग में आय॥

शारंगरव : हे महात्मा सुनते हैं कि प्यारे जनों को पहुंचाने वहीं तक जाना चाहिए जहाँ तक जलाशय न मिले अब यह सरोवर का तट आ गया आप हमें सीख देकर आश्रम को सिधारो।

[सब पेड़ के नीचे ठहरते हैं।]

कण्व : (आप-ही-आप) उस राजा दुष्यन्त के योग्य क्या संदेशा है जो मैं भेजूं।

शकुन्तला : (सखी से हौले-हौले) हे सखी देख चकवी कमल के पत्तों में छुपे हुए प्यारे चकवे को देखे बिना आतुर होकर कहती है कि मैं अभागी हूँ।

अनसूया : सखी ऐसा मत कह।

दोहा

दुख की भारी निशि यह काटति बिन पिय पास ।
मन्द करति कछु बिरह दुख फेर मिलन की आस ॥

कण्व : हे शारंगरव शकुन्तला को आगे करके तू हमारी ओर से उस राजा से यों कहना ।

शारंगरव : जो आज्ञा ।

चौपाई

जानि भले हमको तपधारी । अपनीहू कुल उच्च बिचारी ॥
अरु जो बन्धु उपाय बिनाहीं । भई प्रीति याकी तो माहीं ॥
उचित होइ तोकों नरनाहू । सब रानिन सम राखे याहू ॥
और जू अधिक भागिबस भोगू । बधू बन्धुजन कहन न जोगू ॥

शारंगरव : यह सन्देशा मैंने भली-भाँति गाँठ बाँध लिया है ।

कण्व : बेटी अब तुझे भी कुछ सीख दूंगा क्योंकि बनवासी होकर भी हम लोग लौकिक व्यौहारों को जानते हैं ।

शारंगरव : विद्वान पुरुषों से क्या छुपा है ।

कण्व : बेटी जब तू यहाँ से जाकर पतिकुल में पहुँचे तब—

चौपाई

शुश्रूषा गुरुजन की कीजो । सखी भाव सौतिन में लीजो ॥
भरता यदपि करे अपमाना । कुपित होइ गहियो जिन माना ॥
मिठभाषिन दासिन संग रहियो । बड़े भाग पै गर्व न लहियो ॥
या बिधि तिय गेहिनि पद पावें । उलटी चलि कुलदोष कहावें ॥
कहो गौतमी यह शिक्षा कैसी है ।

गौतमी : कुल बधुओं के लिए यह उपदेश बहुत श्रेष्ठ है । पुत्री इसे ध्यान में रखियो ।

कण्व : बेटी आ मुझसे और अपनी सखियों से मिल ले ।

शकुन्तला : हे पिता क्या प्रियम्बदा अनसूया यहीं से लौट जायँगी ।

कण्व : बेटी जब तक ये क्वारी हैं इनका नगर में जाना योग्य नहीं

है गौतमी तेरे संग जायगी ।

शकुन्तला : (कण्व से भेंटकर) अब मैं पिता की गोद से अलग होकर मलयागिरि से न्यारी हुई चन्दन शाखा की भाँति परदेश में कैसे जाऊँगी ।

कण्व : पुत्री ऐसी बिकल क्यों होती है ।

सवैय्या

जब कन्त कुलीन बड़ यशवंत की जाय के नारि कहाय है तू ।
अति वैभव के नित कामन ते छिनहू अवकाश न पाय है तू ॥
दिश पूरब जैसे दिनेश जने सुत उत्तम वेगि है जाय है तू ।
तब मोते बिछोह भए की बिथा मन में नहिं नेकहु लाय है तू ॥

[शकुन्तला पिता के पैरों पर गिरती है ।]

कण्व : मेरे आशीर्वाद से तेरी मनोकामना पूरी होगी ।

शकुन्तला : (दोनों सखियों के पास जाकर) आओ सखियो दोनों एक ही संग मुझे भेंट लो ।

दोनों सखी : (भेंट कर) हे सखी कदाचित राजा तुझे भूल गया हो तौ यह मुँदरी जिस पर उसका नाम खुदा है दिखा दीजो ।

शकुन्तला : तुम्हारे इस सन्देह ने तौ मुझे कँपा दिया ।

दोनों सखी : कुछ डरने की बात नहीं है अतिस्नेह में बुरी शंका होती ही है ।

शारंगरव : अब दिन पहर से अधिक चढ़ गया चलो बेग बिदा हो ।

शकुन्तला : (आश्रम की ओर मुख करके खड़ी है) हे पिता तपोवन के दर्शन फिर कब कराओगे ।

कण्व : बेटी सुन --

ौपाई

बनितिय बहुत दिवस भूपति की । सौतिनिचारकौन बसुमति की ॥
करिके ब्याह सुवन समरथ कौ । मारग रुके न जाके रथ कौ ॥

दैके ताहि कुटम कौ भारा। तजि के राजकाज व्यवहारा ॥
पति तेरो तुहि संग लै ऐहै। यह आश्रम तब तू पग दैहै ॥

गौतमी : बेटी अब चलने का मुहूर्त्त बीता जाता है पिता को जाने दे। मुनिजी तुम जाओ यह तो बेर-बेर ऐसे ही कहती रहेगी।

कण्व : हे बेटी मेरे तप के काम में बिघ्न पड़ता है।

शकुन्तला : (पिता से फिर मिलकर) हे पिता ! मेरे लिये बहुत शोक मत करना क्योंकि तुम्हारा तपस्या-पीड़ित दुर्बल शरीर हैं।

कण्व : (गहरी श्वास लेकर)—

दोहा

तैं आगे बोए सुता पूजा हित नीवार।
सो उपजे हैं आय ये परन कुटी के द्वार ॥
इन्हें लख न कैसे सकूं अपनी बिथा मिटाय।
ता बिछुरन तें जो भई मेरे हिय में आय ॥
अब जा तेरा मारग सुखकारी हो।

[शकुन्तला साथियों समेत चलती है।]

दोनों सखी : (शकुन्तला की ओर देखकर) हाय-हाय अब बन के वृक्षों ने शकुन्तला को दुरा लिया।

कण्व : (श्वास लेकर) हे अनसूया तुम्हारी सहेली गयी अब तुम शोक छोड़ मेरे पीछे-पीछे चली आओ।

दोनों सखी : हे पिता शकुन्तला बिना तौ तपोवन सूना-सा लगता है हम इसमें कैसे चलें।

कण्व : ठीक है प्रीति में ऐसा ही दीखता है। (ध्यान करता हुआ) शकुन्तला को ससुराल भेजकर अब मैं निश्चिन्त हुआ।

सोरठा

पर घर की धन धीय, पठै ताहि घर पीय के।
आज बिमल मम हीय, फेरि धरोहरि जिमि दई ॥

अंक 5

स्थान—राजभवन

[राजा आसन पर बैठा है, माढव्य पास खड़ा है।]

माढव्य : (कान लगाकर) मित्र, संगीत-शाला की ओर कान लगाओ। देखो, कैसा मधुर आलाप सुनायी देता है ! मेरे जाने तौ रानी हंसपदिका गाने का अभ्यास कर रही है।

दुष्यन्त : अरे चुप रह ! सुनने दे।

[नेपथ्य में राग होता है।]

कालंगड़ा इकताला

भ्रमर तुम मधु के चाखनहार।
आम की रसभरी मृदुल मंजरी तासों प्रीति अपार ॥
रहसि रहसि नित रस लैबे कों धावत है करि नेम।
क्यों कल आई कमल बसेरे कित भूले प्यारी कौ प्रेम ॥

दुष्यन्त : अहा ! कैसा प्रीति उपजानेवाला गीत है !

माढव्य : तुमने इन पदों का अर्थ भी समझा ?

दुष्यन्त : (मुसुकाकर) हाँ, समझा। पहले मैं रानी हंसपदिका पै आसक्त था, अब वसुमती में मेरा स्नेह है, इसलिये मुझे उलाहना देती है। मित्र माढव्य ! तू जा, हमारी ओर से रानी हंसपदिका से कह दे कि हे रानी ! हम इसी उलाहने के



योग्य हैं ।

माढव्य : जो आज्ञा महाराज की (उठता है) । हे मित्र ! जैसे अप्सरा के हाथ से तपस्वी का छटकारा नहीं होता । आज मेरा भी न बनेगा, वह रानी चोटी पकड़वाकर मुझे पराए हाथों से पिटवाएगी ।

दुष्यन्त : जा, चतुराई की रीति से उसे समझा देना ।

माढव्य : जाने क्या गति होगी !

[जाता है ।]

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) यद्यपि मुझे किसी स्नेही का वियोग नहीं है तौ भी गीत के सुनते ही चित्त को आप-से-आप उदासी हो आयी है । इसका क्या हेतु है, यह हो तौ हो कि—

दोहा

लखि के सुन्दर वस्तु अरु मधुर गीत सुनि कोइ ।
सुखिया जनहू के हिये उत्कंठा यदि होइ ।।
कारन ताको जानिये सुधि प्रगटी है आय ।
जन्मान्तर के सखन की जो मन रही समाय ।।

[व्याकुल-सा होकर बैठता है ।]

[कंचुकी आता है ।]

कंचुकी : अहा ! अब मैं इस दशा को पहुँचा हूँ ।

चौपाई

रीति जानि अपनी पदवी की । परम्परा मानी सब ही की ।।
लकुट लई मैंने जो आगे । राज गेह रक्षा हित लागे ।।
तब तें काल जु बहुत बितायो । आय बुढ़ापो मो तन छायो ।।
डिगमिगात पग चलन दुखारो । यही लकुट अब देति सहारो ।।

यह तौ सच है कि राजा को धर्मकाज करने ही पड़ते हैं परन्तु

महाराज धर्म्मासन से उठकर अभी गये हैं, इसलिए उचित नहीं है कि मैं उनसे इसी समय कहूँ कि कण्व ऋषि के चेले आये हैं; क्योंकि इस संदेशे से स्वामी के विश्राम में विघ्न पड़ेगा। नहीं, नहीं, जिनके सिर पर प्रजा-पालन का बोझ है उनको विश्राम कैसा—

दोहा

जोरि तुरँग रथ एकदाँ रबि न लेत विश्राम।
तैसे ही नित पवन कों चलबे ही तें काम॥
भूमि भार सिर पै सदाँ धरत शेष हू नाग।
यही रीति राजान की लेत छठो जो भाग॥

तौ अब मैं इस संदेसे को भुगता ही दूं। (इधर-उधर देखकर) महाराज वे बैठे हैं।

दोहा

पालि प्रजा सन्तान सम थकित चित्त जब होइ।
ढूंढ़त ठाँव इकन्त नृप जहाँ न आवे कोइ॥
सब हाथिन गजराज ज्यों लैके बन के माँह।
घाम लग्यो खोजत फिरत दिन में शीतल छाँह॥

[पास जाकर।]

महाराज की जय हो। हे स्वामी ! हिमालय की तराई के बनवासी तपस्वी स्त्रियों-सहित कण्व मुनि का सन्देसा लेकर आये हैं उनके लिए क्या आज्ञा है ?

दुष्यन्त : (आदर से) क्या कण्व मुनि का सन्देशा लाये हैं ?

कंचुकी : हाँ प्रभू।

दुष्यन्त : तौ सोमरात पुरोहित से कह दे कि इन आश्रम-वासियों को वेद की विधि से सत्कार करके अपने साथ लावें। मैं भी तब तक तपस्वियों से भेंटने योग्य स्थान में पैठता हूँ।

कंचुकी : जो आज्ञा।

[बाहर जाता है।]

दुष्यन्त : (उठकर) हे प्रतीहारी ! अग्नि-स्थान की गैल बता।

प्रतीहारी : महाराज ! यह गैल है।

दुष्यन्त : (इधर-उधर फिरकर, अधिकार के बोझ का दुःख दिखाता हुआ) अपना-अपना मनोरथ पाकर सब प्रसन्न हो जाते हैं; परन्तु राजा की कृतार्थता निरी क्लेश की भरी होती है।

दोहा

हाथ मनोरथ के लगे अभिलाषा भरि जाति।
हाथ लगे कौ राखिबो करत खेद दिन राति॥
नृपति हू यों जानिये ज्यों छत्री कर माहिं।
देति कष्ट पहले इतो जेतो मेटति नाहिं॥

[नेपथ्य में]

दो ढाड़ी : महाराज की जय रहे।

पहली ढाड़ी :

कड़खा

निज कारण दुख ना सहा सहो पराए काज।
राजकुलन व्यवहार यह सो पालहु महराज॥
अपने सिर पै लेत हैं वर्षा शीतरु घाम।
जिमि तरवर हित पथिक के निज तर दै विश्राम॥

दूसरा :

छप्पय

दुष्ट जनन बस करन लेत जब दंड प्रचंडहि।
देत दंड उन नरन चलत मर्य्याद जो छंडहि॥

करत प्रजा प्रतिपाल कलह के मूल बिनासहि।
जिहि निमित्त नृप जन्म धर्म्म सब करत प्रकासहि ।।
महाराज दुष्यन्त जू चिरजीवी नित नवल वय।
मेटि विघ्न उत्पात सब प्रज्जहि करि राखो अभय।।

दोहा

धन वैभव तौ और हू बहुत क्षत्रियन माँहि।
पै सुप्रजा हित तुमहिं में अधिक भेद कछु नाहिं ।।

सोरठा

राखत बन्धु समान याही तें तुम सबन को।
करत मान सम्मान दुःख न काहू देत हो ।।

दुष्यन्त : इन्होंने तौ मेरे मलिन मन को फिर हरा कर दिया।

[इधर-उधर फिरता है।]

प्रतीहारी : महाराज ! अग्निशाला की छत लिपी-पुती स्वच्छ पड़ी है और निकट ही कामधेनु बँधी है, वहीं चलिए।

दुष्यन्त : (सेवकों के कन्धों पर सहारा लेता हुआ छत पर चढ़कर बैठता है) हे प्रतीहारी ! कण्व मुनि ने किस निमित्त हमारे पास ऋषि भेजे हैं ?

सवैय्या

तपसीन के कारज माहिं किधों अब आय बड़ो कोइ विघ्न पर्यो।
बनचारी किधों पशु पक्षिन में काहु दुष्ट नयी उत्पात कर्यो ।।
फल फूलिवो बेलि लता बन कौ मति मेरे ही कर्म्मन तें गिर्यो।
इतने मुहि घेरि संदेह रहे इन धीरज मेरे हिये को हर्यो ।।

प्रतीहारी : मेरे जाने तौ ये तपस्वी महाराज के सुकर्म्मों से प्रसन्न होकर धन्यवाद देने आये हैं।

द्वारपाल : इधर आओ धर्मात्माओ, इस मार्ग आओ।

शारंगरव : हे शारद्वत--

चौपाई

यदपि भूप यह है बड़भागी। थिर मर्याद धर्म अनुरागी।
जासु प्रजा में नीचहु कोई। कुमत कुमारग लीन न होई।
पै मैं तौ नित रह्यो अकेलो। यातें ताहि सुहात सहेलो ।।
मनुष्य भर्यो मुहि यह नृपद्वारा। दीखतजिमिघर जरत अँगारा ।।

शारद्वत : सत्य है जबसे नगर में धसे हैं, यही दशा मेरी भी हो गयी है।

दोहा

इन सुख लोभी जनन में देखत हूँ या भाय।
न्हायो धोयो लखतु ज्यों मैले कों दुख पाय ।।
अथवा शुद्ध अशुद्ध कों सोवत कों जागंत।
बँधुआ कों जैसे लखत कोई मनुष सुतंत ।।

शकुन्तला : (सगुन देखकर) हाय ! मेरी दाहिनी आँख क्यों फड़कती है !

गौतमी : देव कुशल करेगा। तेरा भरता के कुलदेव अमंगलों को मेटि तुझे सुख देंगे।

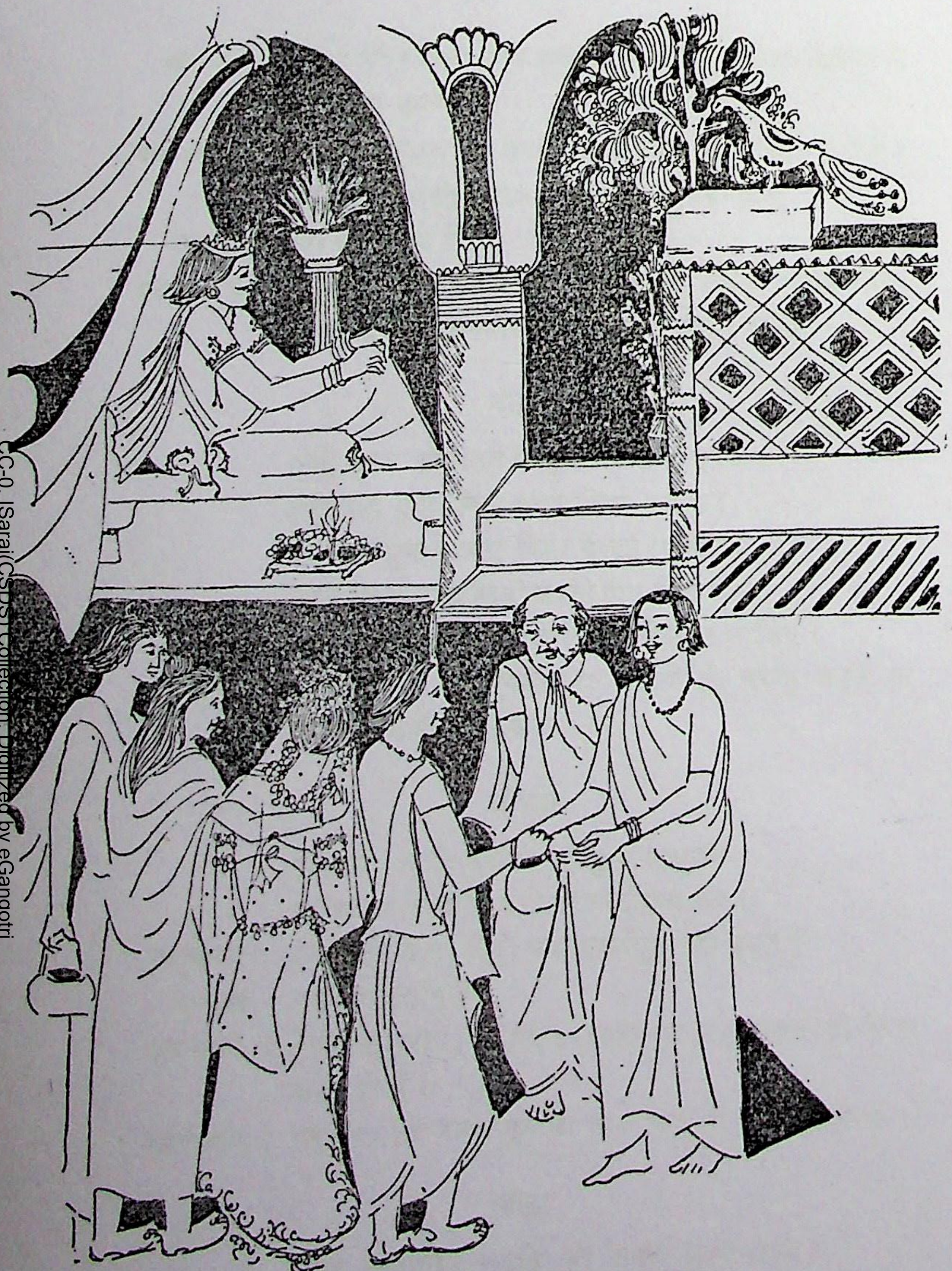
पुरोहित : (राजा को बतलाकर) हे तपस्वियो ! वर्णाश्रम के प्रतिपालक श्री महाराज आसन से उठकर तुम्हारी बाट हेरते हैं; इनकी ओर देखो।

शारंगरव : हे ब्राह्मण ! यह तौ बड़ी बड़ाई की बात है, परन्तु हमसे पूछो तौ यह इनका धर्म्म ही है—

दोहा

फल आए तरवर झुकै झुकत मेघ जल लाय।
विभो पाय सज्जन झुकै यह परकाजि सुभाय ।।

प्रतीहारी : महाराज ! ये ऋषि लोग प्रसन्नमुख दीखते हैं; इससे मैं



जानता हूँ कि कोई कष्ट का काम नहीं लाये।

दुष्यन्त : (शकुन्तला की ओर देखकर) तौ यह भगवती कौन है ?

दोहा

घूंघट पट की ओट दै को ठाड़ी यह बाल।
पूरो दीठ परे नहीं जाको रूप रसाल।।
यह तपसिन के बीच में ऐसी परति लखाय।
लई मनो कोंपल नई पीरे पातन छाय।।

प्रतीहारी : महाराज ! इसका वृतान्त जानने को तौ मेरा जी भी बहुत चाहता है, परन्तु, मेरी बुद्धि काम नहीं करती। हाँ इतना तौ कहूँगी कि इस भगवती का रूप दर्शन योग्य है।

दुष्यन्त : रहने दे, पराई स्त्री को देखना अच्छा नहीं।

शकुन्तला : (आप-ही-आप अपने हृदय पर हाथ रखकर) हे हृदय ! तू ऐसा क्यों डरता है ? आर्य्यपुत्र के प्रेम की सुध करके धीरज धर।

पुरोहित : (आगे जाकर) महाराज ! इन तपस्वियों का आदर-सत्कार विधिपूर्वक हो चुका। अब ये अपने गुरु का कुछ सन्देसा लाये हैं सो सुन लीजिए।

दुष्यन्त : (आदर से) सुनता हूँ, कहने दो।

दोनों ऋषि : (हाथ उठाकर) महाराज की जय रहे।

दुष्यन्त : तुम सबको प्रणाम करता हूँ।

दोनों ऋषि : आपके मनोरथ सिद्ध हों।

दुष्यन्त : मुनियों का तप तौ निरविघ्न होता है।

शारंगरव :

दोहा

जब लग रखवारे बने तुम जग में महराज।
क्यों बिगरेंगे मुनिन के धर्म्म परायण काज।।
ज्योति दिवाकर की रहे जौ लौं मंडल छाय।
अन्धकार नहिं ह्वै सके प्रगट भूमि पै आय।।

दुष्यन्त : तो अब मेरा राजा शब्द यथार्थ हुआ। कहो, लोक-हितकारी कण्व मुनि प्रसन्न हैं।

शारंगरव : महाराज, कुशल तौ तपस्वियों के सदा अधीन ही रहती है। गुरुजी ने आपकी अनामय पूछकर यह कहा है।

दुष्यन्त : क्या आज्ञा की है?

शारंगरव : कि तुमने मेरी इस कन्या को गान्धर्व रीति से ब्याहि लिया सो ब्याह मैंने प्रसन्नता से अंगीकार किया। क्योंकि—

दोहा

तुम्हें मुख्य सज्जनन में हम जानत हैं भूप।
शकुन्तला हू है निरी सतकिरिया कौ रूप॥
ऐसे सम गुण बरबधू बिधि ने दुहू मिलाय।
बहुत दिनन पाछे लियो अपनो दोष मिटाय॥

अब इस गर्भवती को धर्म्माचरण निमित्त लीजिए।

गौतमी : हे राजा, मैं भी कुछ कहा चाहती हूँ, परन्तु कहने का अवकाश अभी नहीं मिला।

सोरठा

पूछे याने नाहिं गुरुजन तुमहु न बन्धुजन।
या कारज के माहिं करो परस्पर बात अब॥

शकुन्तला : (आप-ही-आप) देखूं, अब आर्य्यपुत्र क्या कहते हैं।

दुष्यन्त : यह क्या स्वाँग है?

शकुन्तला : (आप-ही-आप) हे दई! राजा का यह वचन तौ निरा अग्नि ही है।

शारंगरव : यह क्या! हे राजा तुम तौ लोकाचार की बातें जानते हो।

दोहा

जाय सुहागिनि बसति जो अपने पीहर धाम।
लोग बुरी शंका करैं यदपि सती हू बाम॥

यातें चाहत बन्धुजन रहे सदा पति - गेह।
प्रमदा नारि सुलच्छिनी बिनहु पिया के नेह॥

दुष्यन्त : क्या मेरा इस भगवती से कभी ब्याह हुआ था।

शकुन्तला : (उदास होकर आप-ही-आप) अरे मन! जो तुझे डर था सोई आगे आया।

शारंगरव : क्या अपने किये में अरुचि होने से धर्म छोड़ना राजा को योग्य है।

दुष्यन्त : यह झूठी कल्पना का प्रश्न क्यों करते हो?

शारंगरव : (क्रोध से) जिनको ऐश्वर्य्य का मद होता है उनका चित्त स्थिर नहीं रहता।

दुष्यन्त : यह कठोर वचन तुमने मेरे ही लिए कहा।

गौतमी : (शकुन्तला से) हे पुत्री, अब थोड़ी देर को लाज छोड़ दे। ला मैं तेरा घूंघट खोल दूं, जिससे तेरा भर्त्ता तुझे पहचान ले।

[घूंघट खोलती है।]

दुष्यन्त : (शकुन्तला को देखकर आप-ही-आप)—

दोहा

बरी कि कबहूँ ना बरी परी हिये उरझेट।
ठाढ़ी रूप ललाम लै सम्मुख मेरे भेट॥
सकत न याकौ लैन सुख नहिं मैं त्यागि सकात।
ओस भरे सद कुन्द कों चैसे मधुकर प्रात॥

[सोचता हुआ बैठता है।]

प्रतीहारी : (दुष्यन्त से) महाराज तौ अपने धर्म्म में सावधान हैं, नहीं तौ सन्मुख आये ऐसे स्त्री-रत्न को देख कौन सोच-विचार करता है।

शारंगरव : हे राजा, ऐसे चुपके क्यों हो रहे हो?

दुष्यन्त : हे तपस्वियो, मैं बार-बार सुध करता हूँ परन्तु स्मरण नहीं होता कि इस भगवती से कभी मेरा विवाह हुआ और जब इस गर्भवती के लेने से मुझे क्षेत्री कहलाने का डर है तो क्योंकर इसे स्वीकार कर सकता हूँ।

शकुन्तला : (आप-ही-आप) हे दैव ! जो मेरे संग ब्याह ही में सन्देह है तौ अब मेरी बहुत दिन की लगी आशा टूटी।

शारंगरव : ऐसा मत कहो—

चौपाई

जासु सुता नृप तैंछलि लीनी। यह अनीति जाके सँग कीनी।
जाने तदपि बुरी नहि मान्यो। ब्याह तुम्हारी सुद्ध प्रमान्यो ॥
चुरी बस्तु दैके जिमि कोई। चोरहि साह बनावत होई ॥
सो न जोग अपमान मुनीसा। देखि बिचारि तुही छिति ईसा ॥

शारद्वत : शारंगरव अब तुम ठैरो। हे शकुन्तला, हमको जो कुछ कहना था कह चुके और उत्तर भी सुन लिया। अब तू कुछ कह जिससे इसे प्रतीति हो।

शकुन्तला : (आप-ही-आप) जो वह स्नेह ही न रहा तौ अब सुध दिलाने से क्या प्रयोजन ? अब तौ मुझे लोक के अपवाद से बचने की चिन्ता है। (प्रगट) हे आर्यपुत्र ! (आधा कहकर रुक जाती है) और जो ब्याह ही में सन्देह है तो यह शब्द अनुचित है। हे पुरुवंशी ! तुमको योग्य नहीं है कि आगे तपोबन में मुझ सीधे स्वभाववाली को प्रतिज्ञाओं से फुसलाकर अब ऐसे निठुर बचन कहते हो।

दुष्यन्त : (कान पर हाथ रखकर) पाप से भगवान बचावे।

दोहा

क्यों चाहति तू पदमिनी करन पातकी मोहि।
अरु दूषित मम वंश कों मैं पूछत हों तोहि ॥
सरिता निज तट तोरि जो रूखन लेति खसाय।
नारि बिगारति आपनो शोभा देति नसाय ॥



शकुन्तला : जो तुम भूलकर सत्य ही मुझे परनारी समझे हो तौ लो पते के लिए तुम्हारे ही हाथ की मुँदरी देती हूँ, जिससे तुम्हारी संका मिट जायेगी।

दुष्यन्त : अच्छी बात बनाई।

शकुन्तला : (अँगुली देखकर) हाय-हाय मुँदरी कहाँ गयी !

[बड़ी व्याकुलता से गौतमी की ओर देखती है।]

गौतमी : जब तैंने शुक्रावतार के निकट शचीतीर्थ में जल आचमन किया था तब मुँदरी गिर गयी होगी।

दुष्यन्त : (मुसुकाकर) स्त्री की तत्काल बुद्धि यही कहलाती है।

शकुन्तला : यह तौ बिधाता ने अपना बल दिखाया, परन्तु अभी एक पता और भी दूंगी।

दुष्यन्त : सो भी कह दे, मैं सुनूंगा।

शकुन्तला : उस दिन की सुध है जब माधवी कुंज में तुमने कमल के पत्ते में जल अपने हाथ से लिया था।

दुष्यन्त : तब क्या हुआ ?

शकुन्तला : उसी छिन मेरा पाला हुआ दीर्घापांग नाम मृगछौना आ गया। तुमने बड़े प्यार से कहा—आ छौने; पहले तूही पीले। उसने तुम्हें विदेशी जान तुम्हारे हाथ से जल न पिया, फिर उसी पत्ते में मैंने पिलाया तौ पी लिया। तब तुमने हँस-कर कहा था कि सब अपने ही सहवासी को पत्याता है, तुम दोनों एक ही बन के बासी हो।

दुष्यन्त : अपना प्रयोजन साधनेवालियों को ऐसी मीठी-झूठी बातों से तौ कामीजनों के मन डिगते हैं।

गौतमी : बस राजा ऐसे बचन मत कहो। यह कन्या तपोबन में पली है छल-छिद्र क्या जाने।

दुष्यन्त : हे वृद्ध तपस्विनी सुनो—

दोहा

बिना सिखाई चतुरई तिरियन की बिख्यात।
पसु पंछिन हू में लखी मनुषन की कहा बात।।
लेति पखेरू आन तें कोइलिया पलवाय।
तब लग अपने चेंटुअन जब लग उड़्यो न जाय।।

शकुन्तला : (क्रोध करके) हे अनारी ! तू अपना-सा कुटिल हृदय सबका जानता है तुझ-सा छलिया कौन होगा जो घास-फूस से ढके हुए कुए की भाँति धर्म्म का भेष रखता है।

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) इसका कोप बनावट का-सा नहीं दीखता और इसी से मेरे मन में सन्देह उपजता है क्योंकि—

दोहा

बिन सुधि आए विथित चित मैं जु कह्या बहु बार।
मेरो तेरो ना भयो कहुँ इकन्त में प्यार।।
तब अति राते दृगन पै लीनी भौंह चढ़ाय।
तोरचो चाप मनोज कौ मनहु कोप में आय।।

पुरोहित : हे भगवती ! दुष्यन्त के सब काम प्रसिद्ध हैं, परन्तु यह हमने कभी नहीं सुना कि तेरा ब्याह इनके साथ हुआ।

शकुन्तला : मुंह में खाँड़, पेट में विष, ऐसे इस पुरुवंशी के फन्दे में फँस-कर अब मैं निर्लज्ज कहलाई सो ठीक है।

[मुख पर आँचल डालकर रोती है।]

शारंगरव : जो काम बिना विचारे किया जाय, इसी भाँति दुख देता है। इसीसे कहा कि—

दोहा

बिन परखे करिये नहीं कहुँ इकन्त सम्बन्ध।
ऐसे कारज के विषय निरे न बनिये अन्ध।।
अनजाने मन के मरम जुरति कहूँ जो प्रीति।
पलटि बैर बनि जाति फिर पाछे याही रीति।।

दुष्यन्त : क्या तुम इसी की बातों की प्रतीति करके मुझे इतने दोष लगाते हो ?

शारंगरव : (अवज्ञा करके) क्या तुमने यह उलटा वेद नहीं सुना ?

दोहा

जन्महिं तें जाने नहीं जानी छल की रीति।
ताके बचनन की कछु करिये नहीं प्रतीति ।।
मानि लीजिये उनहिं कों सतवादी विद्वान।
विद्या लों सीख्यो भलो जिन परबञ्चन ज्ञान ।।

दुष्यन्त : हे सत्यवादी ! भला यह भी माना कि हमने दूसरों को छलना विद्या की भाँति सीखा है, परन्तु कहो तौ इस भगवती के छलने से मुझे क्या मिलेगा ?

शारंगरव : भारी विपत्ति।

दुष्यन्त : नहीं-नहीं; यह बात प्रतीति न की जायगी कि पुरुवंशी अपने वा पराए के लिए विपत्ति माँगते हैं।

शारद्वत : हे शारंगरव ! इस बात से क्या अर्थ निकलेगा ? हम तौ गुरु का सन्देसा लाये थे सो भुगता चुके, अब चलो।

[राजा की ओर देखकर।]

चौपाई

यह तेरी नारी नृपति तू याको भरतार।
राखन छोड़न कौ सबै तोही को अधिकार ।।
आओ गौतमी, आगे चलो।

[दोनों मिश्र और गौतमी जाते हैं।]

शकुन्तला : हाय ! इस छलिया ने तौ त्यागी। अब क्या तुम भी मुझ दुखिया को छोड़ जाओगे ?

[उनके पीछे चलती है।]

गौतमी : (खड़ी होकर) बेटा शारंगरव ! शकुन्तला तौ यह पीछे-पीछे रोती आती है। अभागी को निर्मोही पति ने छोड़ दिया, अब क्या करें ?

शारंगरव : (क्रोध करके शकुन्तला से) हे कर्महीन ! तू क्या स्वतन्त्र हुआ चाहती है ?

[शकुन्तला थरराती है।]

शारंगरव :

चौपाई

है जो शकुन्तला तू ऐसी। नरपति तोहि बतावत जैसी ।।
तौ जग में तू पतित कहावे। पिता गेह आवन क्यों पावे ।।
अरु जानति है मन माहीं। दोष कियो मैंने कछु नाहीं ।।
तौ यहिं रहति लगै तू नीकी। दासी ह्व बनि के निज पी की ।।
अब तू यहीं ठैर, हम आश्रम को जाते हैं।

दुष्यन्त : हे तपस्वियों ! क्यों इसे धोका देते हो ? देखो—

दोहा

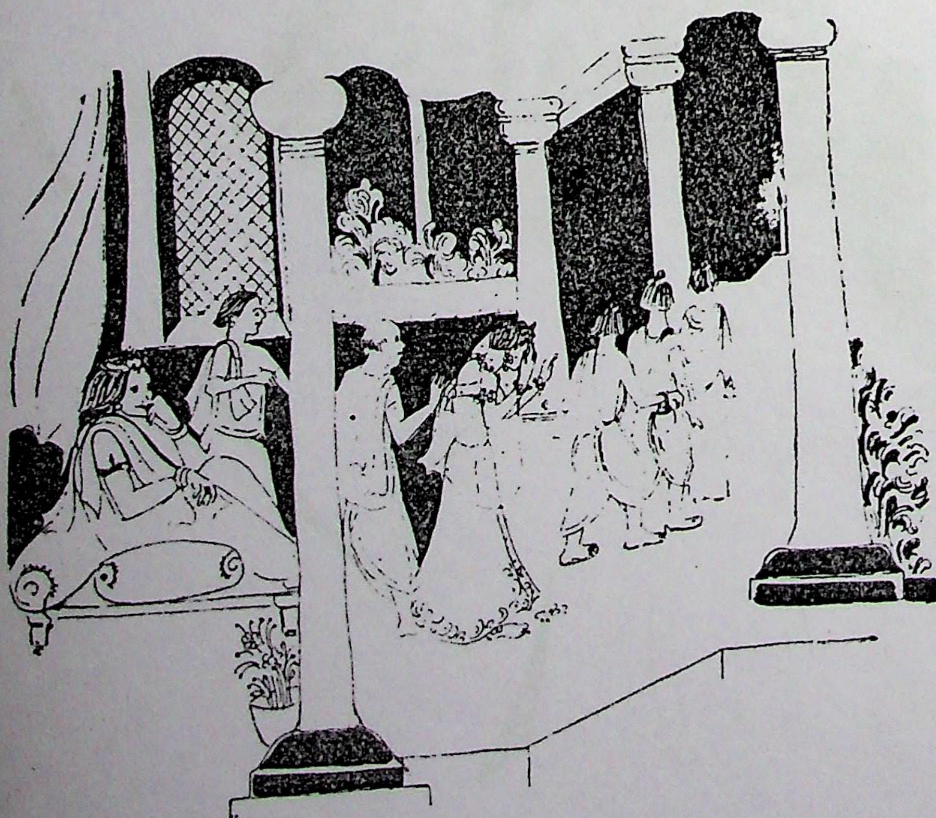
चन्द जगावतु कुमुदनी पद्‌मिनिही दिननाथ।
जती पुरुष कहुँ ना गहें परनारी कौ हाथ ।।

शारंगरव : सत्य है, परन्तु तुम ऐसे हो कि दूसरी का संग पाकर अपने पहले किये को भूलते हो, फिर अधर्म्म से डरना कैसा ?

दुष्यन्त : (पुरोहित से) मैं तुमसे इस विषय में यह पूछता हूँ।

दोहा

कै मैं ही बौरो भयो कै झूठी यह नारि।
ऐसे संसय के विषय तुम कछु कहो बिचारि ।।
किधों दारत्यागी बनूँ करि याको अपकार।
कै परनारी परस कौ लेहुँ दोष सिरभार ।।



पुरोहित : (सोचकर) अब तौ यह करना चाहिए।

दुष्यन्त : क्या करना चाहिए सो कृपा करके कहो।

पुरोहित : जब तक इस भगवती के बालक का जन्म हो तब तक यह मेरे घर रहे; क्योंकि अच्छे-अच्छे ज्योतिषियों ने आगे ही कह रक्खा है कि आपके चक्रवती पुत्र होगा। सो कदाचित् इस मुनि-कन्या के ऐसा ही पुत्र हो जिसके लक्षण चक्रवर्ती के से पाये जायँ। तौ इसे आदर से रनवास में लेना और न हो तो यह अपने पिता के आश्रम को चली जायगी।

दुष्यन्त : जो तुम बड़ों को अच्छा लगे सो करो।

पुरोहित : (शकुन्तला से) आ पुत्री, मेरे पीछे चली आ।

शकुन्तला : हे धरती ! तू मुझे ठौर दे, मैं समा जाऊँ।

(रोती हुई पुरोहित के पीछे-पीछे तपस्वियों-सहित जाती है और राजा शाप के वश भूला हुआ भी शकुन्तला ही का ध्यान करता है।)

(नेपथ्य में) अहा ! बड़ा अचम्भा हुआ ?

दुष्यन्त : (कान लगाकर) क्या हुआ ?

[पुरोहित आता है।]

पुरोहित : (आश्चर्य करके) महाराज ! बड़ी अद्भुत बात हुई।

दुष्यन्त : क्या हुआ ?

पुरोहित : जब यहाँ से कण्व के चेलों की पीठ फिरी—

दोहा

निन्दा अपने भागि की चली करति वह तीय।
रोई बाँह पसारि के भई बिथित अति हीय॥

दुष्यन्त : तब क्या हुआ ?

पुरोहित :

दोहा

तब अप्सर तीरथ निकट जाने कित तें आय।
ज्योति एक तिय रूप में लै गइ वाहि उड़ाय॥



[सब आश्चर्य करते हैं।]

दुष्यन्त : मुझे जा बात पहले भास गयी थी सोई हुई। अब इनमें तर्क करना निष्फल है। तुम जाओ, विश्राम करो।

[बाहर जाता है।]

दुष्यन्त : हे वेत्रवती ? मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है; तू मुझे शयन-स्थान की गैल बता।

प्रतीहारी : महाराज, इस मार्ग आइये।

दुष्यन्त : (चलता हुआ आप-ही-आप)——

दोहा

बिन आए सुधि ब्याह की मैं त्यागी मुनि धीय।
पै हीयो मेरो कहत वह साँची है तीय॥

[सब जाते हैं।]

छठे अंक का प्रवेशक

स्थान—एक गली

[राजा का साला कोतवाल और प्यादे एक मनुष्य को बाँधे हुए लाते हैं।]

पहला प्यादा : (बँधुए को पीटता हुआ) अरे कुम्भिलक, बतला तौ यह अँगूठी तेरे हाथ कहाँ लगी ? इस पै तौ राजा का नाम खुदा है।

कुम्भिलक : (काँपता हुआ) दया करो, मैं ऐसा अपराधी नहीं हूँ जैसा तुम समझे हो।

पहला प्यादा : क्या तू कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण है कि सुपात्र जान राजा ने अँगूठी तुझे दक्षिणा में दी हो ?

कुम्भिलक : सुनो, मैं शुक्रावतार तीर्थ का धींवर हूँ।

दूसरा प्यादा : अरे चोर ! हम क्या तेरी जात-पाँत पूछते हैं ?

कोतवाल : हे सूचक, इसे अपना सब ब्योरा आद्योपान्त कहने दो, बीच में रोको मत।

दोनों प्यादे : जैसे कोतवाल जी कहते हैं वैसे ही कर रे।

कुम्भिलक : मैं तौ जलावन्सी से मछली पकड़ के अपने कुटुम्ब का पालन करता था।

कोतवाल : (हँसकर) तेरी बहुत अच्छी आजीविका है।

कुम्भिलक : हे स्वामी, ऐसा मत कहो।

दोहा

जा जाके कुल कौ धरम सो नहिं बरजन जोग।
निन्दितहू किन होइ वह यों भाषत हैं लोग॥

पशु मारन दारुन करम करत बिप्र बलि काज।
देखी जाति दयालुता तिनहू में महाराज॥

कोतवाल : फिर क्या हुआ ?

कुम्भिलक : एक दिन एक रोहू मछली मैंने काटी। उसके पेट में यह हीरा जड़ी अँगूठी निकली। इसे बेचने को मैं दिखला रहा था तब तुमने आ थामा, यही इसका ब्योरा है। अब जैसा तुम्हारे धर्म में आवे करो। चाहो मारो, चाहो छोड़ो।

कोतवाल : हे जानुक ! इसके शरीर से कच्चे मांस की बास आती है, इससे यह निश्चय गोह खानेवाला धींवर है। परन्तु अँगूठी मिलने के मद्धे इससे कुछ और भी पूछताछ होनी चाहिए। चलो, राजा के पास चलें।

दोनों प्यादे : बहुत अच्छा ! अरे गठकते चल।

[सब चलते हैं।]

कोतवाल : हे सूचक ! तुम दोनों नगर-द्वार के सामने इसकी चौकसी करते रहो। मतवाले मत हो जाना। तब तक मैं अँगूठी मिलने का ब्योरा सुनाकर राजा की आज्ञा ले आऊँ।

दोनों प्यादे : अच्छा, जाओ, स्वामी को प्रसन्न करो।

[कोतवाल जाता है।]

पहला प्यादा : हे जानुक ! कोतवालजी को बड़ी बेर लगी।

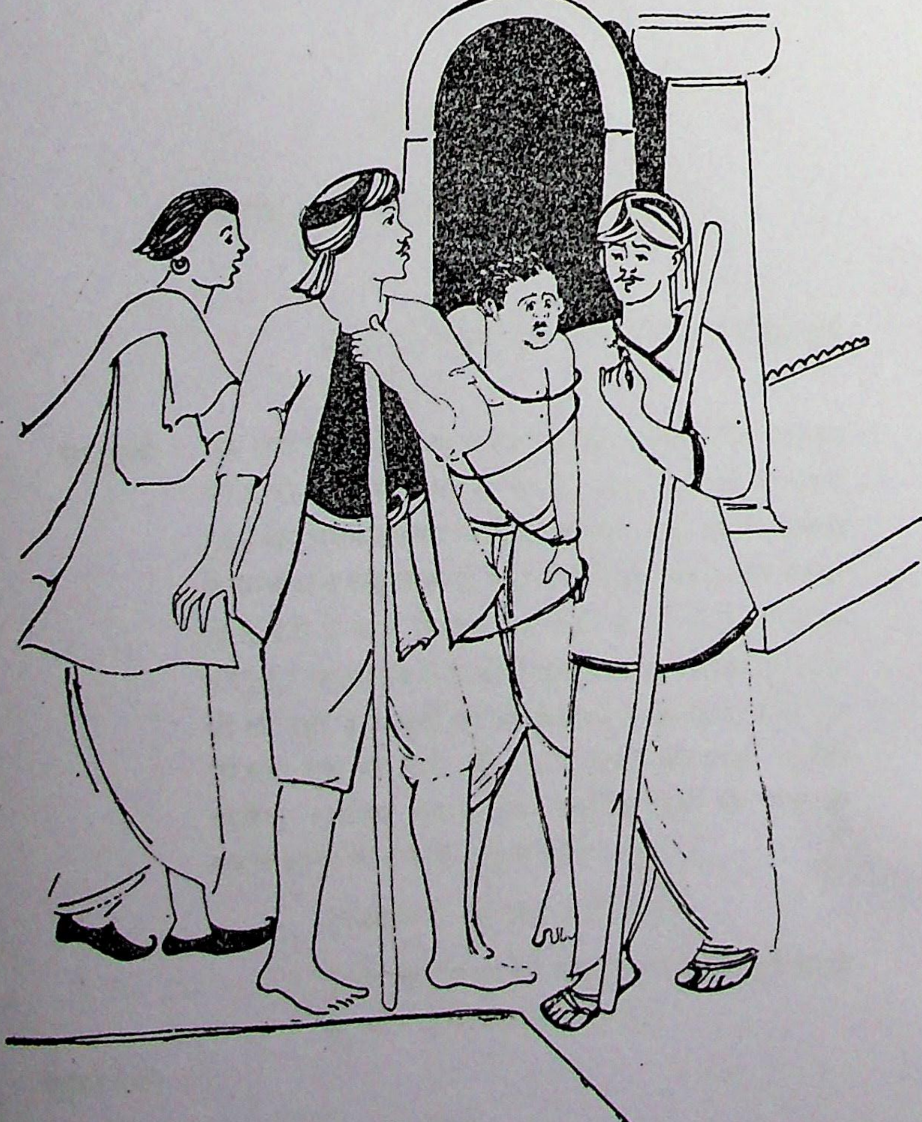
दूसरा प्यादा : राजाओं के पास अवसर ही से जाना होता है।

पहला प्यादा : (धींवर की ओर देखकर) हे जानुक ! यह अपराधी सूली पावेगा। इसके सिर पर माला रखने को मेरे हाथ खुजाते हैं।

कुम्भिलक : मुझे बिना अपराध क्यों मारना चाहते हो ?

दूसरा प्यादा : (देखकर) कोतवालजी तौ वे हाथ में पत्र लिये आते हैं। अरे कुम्भिलक ! अब तू गिद्धों का भक्षण बनेगा अथवा कुत्तों का मुख देखेगा ?

[कोतवाल आता है।]



कोतवाल : हे सूचक, इस धींवर को छोड़ दो, अँगूठी का भेद खुल गया।

सूचक : जो आज्ञा।

दूसरा प्यादा : यह तौ यमराज के घर से लौट आया।

[बन्धन खोलता है।]

कुम्भिलक : (कोतवाल को हाथ जोड़कर) कहो स्वामी, मेरी आजीविका कैसी है?

कोतवाल : अरे ! महाराज की आज्ञा है कि अँगूठी का पूरा मोल तुझे मिले और कुछ और भी दिया जाय। सो यह ले।

[द्रव्य देता है।]

कुम्भिलक : (हाथ जोड़कर और द्रव्य लेकर) स्वामी ने मुझ पर बड़ी दया की।

सूचक : दया क्यों न की। तुझे सूली से उतार हाथी के मस्तक पर विठा दिया।

जानुक : कोतवालजी, इस पारितोषिक से जान पड़ता है कि अँगूठी बड़े मोल की होगी।

कोतवाल : मेरे जान स्वामी ने अँगूठी का रत्न तौ बड़े मोल का नहीं माना, परन्तु उसके देखने से राजा को अपने किसी प्यारे की सुधि आ गयी; क्योंकि यद्यपि स्वामी का स्वभाव गम्भीर है तौ भी अँगूठी देखते ही थोड़ी बेर तक उदास रहे।

सूचक : तौ तुमने राजा का बड़ा काम किया।

जानुक : यों कहो कि इस धींवर का बड़ा काम किया।

[धीवर की ओर ईर्षा से देखता है।]

कुम्भिलक : रिस मत हो, अँगूठी का आधा मोल फूलमाला के पलटे तुम्हें भी दूँगा।

जानुक : तूझे ऐसा ही चाहिए।

कोतवाल : अरे धींवर ! अब तौ तू हमारा बड़ा प्यारा मित्र हुआ। चलो कलार की हाट में मदिरा को प्रथम प्रीति का साक्षी बनावें।

[सब जाते हैं।]

अंक 6

स्थान—राजभवन की फुलवाड़ी

[आकाश से सानुमती अप्सरा विमान में बैठी हुई जाती है।]

सानुमती : जब तक सज्जनों के न्हाने का समय है, अप्सरा तीर्थ पर हम को बारी-बारी से जाना पड़ता है, इस काम से तौ मैं निरचू हुई। अब चलकर उस राजर्षि का वृत्तान्त देखूं, क्योंकि मेनका के सम्बन्ध से शकुन्तला तौ मेरा अंग ही हो गयी है और मेनका ही ने बेटी के काम निमित्त मुझे भेजा है। (चारों ओर देखकर) हैं ! ऋतोत्सव के दिनों में भी राजभवनों में क्यों उदासी-सी छा रही है ! मुझे यह तो सामर्थ्य है कि बिना प्रगट हुए भी सब वृत्तान्त जान लूं; परन्तु सखी की आज्ञा माननी चाहिए, इसलिए इन उद्यान रखानेवालियों के पास ही अपनी माया के बल से अदृश्य होकर बैठूंगी।

[विमान से उतरकर बैठती है।]

[एक चेरी आम की मंजरी को देखती हुई आती है, और दूसरी उसके पीछे है।]

पहली चेरी :

दोहा

सरस आम की मंजरी हरित पीत कछु लाल।
हे सर्वस्व बसन्त तू शोभा तुही रसाल।।

प्रथम दरस तेरा भयो मोहि आज ही आय।
बिनवति हों तू हूजियो ऋतु कों मंगलदाय।।

दूसरी : हे कोकिला। तू आप-ही-आप क्या कह रही है ?

पहली : अरी मधुकरी, आम की मंजरी देख कोकिला उन्मत्त होती ही है।

दूसरी : (प्रसन्न होकर और निकट जाकर) क्या प्यारी बसन्त ऋतु आ गयी ?

पहली : हाँ तेरे मधुर गीत गाने के दिन आ गये।

दूसरी : हे सखी, कामदेव की भेंट को मैं इस वृक्ष से मंजरी लूंगी, तू मुझे सहारा देकर उचका दे।

पहली : जो मैं सहारा दूंगी तो भेंट के फल से भी आधा लूंगी।

दूसरी : जो तू यह न कहती तौ क्या आधा फल न मिलता ? मुझे-तुझे तौ विधाता ने एक प्रान दो देह बनाया है (सखी का सहारा लेकर मंजरी तोड़ती है।) अहा ! ये आम की कलियाँ अभी खिली नहीं हैं तौ भी जिस ठौर टूटी हैं कैसी सुहावनी महक देती हैं।

[अंजली बाँधकर मंजरी अर्पण करती है।]

दोहा

तोहि आम की मंजरी अरपति हों सिर माथ।
महाराज कन्दर्प के धनुष लियो जिन हाथ।।
तू पाँचन में हूजियो सब ते तीखो बान।
परदेशिन की तियन के छेदन काज पिरान।।

[कंचुकी आता है।]

कंचुकी : (रिस होकर) हे बाउलियो ! राजा ने तौ आज्ञा दे दी है कि अब के बरस वसन्तोत्सव न होगा, फिर तुम क्यों आम की कलियों को तोड़ती हो ?

दोनों : (डरती हुई) अब तौ हमारा अपराध क्षमा करो। हमने नहीं

जाना था कि राजा ने ऐसी आज्ञा दी है।

कंचुकी : तुमने नहीं जाना, वसन्त के वृक्षों ने और उनमें वसनेवाले पखेरुओं ने भी तौ महाराज की आज्ञा मानी है। देखो इसी से—

सवैय्या

यह आय घने दिन तें हैं लगी परि देति पराग न आमकली।
कलियाय कुरेकौ रह्यो विरुला परि लेत नहीं छबि फूलि भली ॥
रुकि कंठहि कोकिल कूक रही ऋतु यद्यपि सीत गई है चली।
मति खेंचि निषंग तें बान कछू डर मानि धरचो फिर काम चली ॥

दोनों : इसमें सन्देह नहीं, कि यह राजर्षि ऐसा ही प्रतापी है।

पहली : अजी, थोड़े ही दिन हुए हैं कि महाराज के चरनों म उनके साले मित्राबसु की भेजी हुई हम आयी हैं और यहाँ हमको प्रमदबन की रखवाली का काम मिला है। इसलिए यह वृत्तान्त हमने पहले नहीं सुना था।

कंचुकी : हुआ सो हुआ, फिर ऐसा मत करना।

दोनों : हे सज्जन ! हमारे मन में यह जानने की लालसा है कि राजा ने क्यों बसन्तोत्सव बरजा है ? जो हम इसके सुनने योग्य हों तौ कृपा करके बतला दो।

सानुमती : (आप-ही-आप) मनुष्य को उत्सव सदा प्यारा होता है। इसलिए कोई बड़ा ही कारण होगा जिससे राजा ने ऐसी आज्ञा दी है।

कंचुकी : (आप-ही-आप) यह तौ प्रसिद्ध बात है। इसके कह देने में क्या दोष है ? (प्रगट) क्या शकुन्तला के त्याग की चरचा तुम्हारे कानों तक नहीं पहुँची ?

दोनों : हाँ, अँगूठी मिल जाने तक का ब्योरा तौ हमने राजा के साले के मुख से सुन लिया है।

कंचुकी : तौ अब मुझे थोड़ा ही कहना रहा। सुनो, जब महाराज को अपनी अँगूठी देखकर सुध आयी तो तुरन्त कह दिया कि



शकुन्तला से एकान्त में मेरा ब्याह हुआ था और मैंने उसे बेसुधी में त्यागा। जबसे यह सुध आयी है तब से स्वामी पछतावे में पड़े हैं।

चौपाई

सुख-सामा अब कछु न सुहावे । मंत्रीगण न निकट नित आवे ।।
जागत जाति रीति सब काटी। लेत करोट सेज की पाटी ।।
जब रनवास जाय बतरावे । सभ्य बचन निज तियन सुनावे ।।
फिर फिर भूल करत नामन तें। चुप रह जात लजायो मन में ।।

सानुमती : (आप-ही-आप) यह बात तो मुझे प्यारी लगी।

कंचुकी : इसी विलाप के कारण बसन्तोत्सव बरज दिया गया है।

दोनों : यह तो उचित ही था।
(नेपथ्य में) इधर आइये, इधर आइये।

कंचुकी : (कान लगाकर) महाराज इधर ही आते हैं। जाओ तुम अपना-अपना काम देखो।

दोनों : अच्छा।

[दोनों जाती हैं।]

[राजा विलापियों के भेष में आता है और प्रतीहारी और माढव्य साथ हैं।]

कंचुकी : (राजा की ओर देखकर) सत्य है, तेजस्वी पुरुष सभी अवस्था में अच्छे लगते हैं। हमारे स्वामी यद्यपि उदासी में हैं तौ भी इनका दर्शन कैसा मनोहर है!

घनाक्षरी

भूषन उतारे साज मंडन के दूर डारे
कंकन ही एक हाथ बाएँ राखि लीनी है।
ताती ताती श्वासन बिनास्यो रूप होठन कौ
नीको लाल रंग मारि फीको पारि दीनो है ।।

सोचत गमाई नींद जागत बिताई राति
आँखि में आयन के ललाई बास कीनो है।
तेज के प्रताप गात कृच्छहू लखात नीको
दीपक चढ़ायो सान हीरा जिमि छीनो है ।।

सानुमती : (राजा की ओर देखकर) शकुन्तला अपना अनादर हुए पर भी इसके विरह में व्यथित हो रही है। सों क्यों न हो, यह इसी योग्य है।

दुष्यन्त : (बहुत सोचता हुआ इधर-उधर फिरकर।)

दोहा

चेतायो चेत्यो नहीं मृगनैनी जब आप।
अब चेत्यो यह हत हियो सहत काज संताप ।।

सानुमती : (आप-ही-आप) अहा उस तपस्विनी के बड़े भाग हैं।

माढव्य : (आप-ही-आप) इसको शकुन्तलारूपी व्याधि ने फिर घेरा। न जानूं क्या उपाय होगा।

कंचुकी : (दुष्यन्त के पास जाकर) महाराज की जय हो, हे प्रभू! मैं प्रमदबन को भली-भाँति देख आया। आप चलकर जहाँ इच्छा हो, उस आनन्द के स्थान में विश्राम कीजिये।

दुष्यन्त : हे प्रतीहारी! तू हमारा नाम लेकर पिशुन मंत्री से कह दे कि बहुत जागने से हममें धर्म्मासन पर बैठने की सामर्थ्य नहीं रही। इसलिए जो कुछ काम-काज प्रजा-सम्बन्धी हो, लिखकर हमारे पास यहीं भेज दे।

प्रतीहारी : जो आज्ञा।

[बाहर जाता है।]

दुष्यन्त : वातायन! तू भी अपने काम पर जा।

कंचुकी : जो आज्ञा महाराज की।

[बाहर जाता है।]

माढव्य : तुमने यह जगह तौ भली निर्मक्ष कर दी। अब घाम-शीत

की मेटनेवाली प्रमदबन की रमनीक कुंज में मन बहलाओ ।

दुष्यन्त : हे माढव्य । यह कहनावत कि आपदा छिद्र देखती रहती है, सच है; क्योंकि—

दोहा

मुनि दुहिता संग ब्याह की सुरति नसावनहार ।
अब ही मो मन तें टरचो अंधकार भ्रमभार ।।
तौ लों मनसिज धनुष लै आया लगी न बार ।
आम मंजरी बान धरि मोपै करन प्रहार ।।

माढव्य : नैक ठैरो; मनसिज के बानों को अभी लाठी से तोड़े डालता हूँ ।

[आम की मंजरियों को लाठी उठाकर झूरने को खड़ा होता है ।]

दुष्यन्त : (मुसुकाकर) हाँ, मैंने तेरा ब्रह्मतेज देख लिया । बता मित्र अब कहाँ बैठकर प्यारी की उनहारवाली लताओं से आँख ठण्ढी करूँ ?

माढव्य : क्या तुमने दासी चतुरिका को आज्ञा नहीं दी है कि हम इस समय माधवी मण्डप में मन बहलावेंगे । तू जाकर वहीं उस पट्टी को ले आ जिसमें मेरे हाथ का खेंचा हुआ भगवती शकुन्तला का चित्र है ।

दुष्यन्त : जो ऐसा मनोहर स्थान है तौ माधवी मण्डप का मार्ग बतला ।

माढव्य : इस मार्ग आओ मित्र ।

[दोनों चलते हैं और सानुमती पीछे-पीछे जाती है ।]

माढव्य : जहाँ मणिजटित पटिया बिछी है यही माधवी-कुँज है निस्सन्देह यह ऐसी दीखती है मानो मनोहर फूलों की भेंट लिये हमें चादर देती है । चलो, यहीं बैठें ।

[दोनों कुँज में बैठते हैं ।]

सानुमती : (आप-ही-आप) इस लता की ओट में बैठकर मैं भी अपनी सखी का चित्र देखूँगी, फिर उसके पति का बड़ा अनुराग जाकर उससे कहूँगी ।

[लता की ओट में बैठती है ।]

दुष्यन्त : हे मित्र ! अब मुझे शकुन्तला के पहले वृत्तान्त की सब सुध आ गयी । मैंने तुझसे भी तौ कहा था; परन्तु जिस समय मुझसे उसका अनादर बना तू मेरे पास न था अब तक मैंने भी कभी नाम न लिया । सो क्या तू भी मेरी ही भाँति उसको भूल गया था ?

माढव्य : नहीं, नहीं; मैं नहीं भूला था । परन्तु जब तुम सब बात कह चुके थे तब यों भी तौ कहा था कि यह स्नेह की कहानी हमने मन बहलाने को बनायी है और मुझ गोबरगनेश ने तुम्हारे कहने को अपने भोले भाव से प्रतीति कर लिया था—भवितव्यता प्रबल है ।

सानुमती : (आप-ही-आप) ठीक कहा ।

दुष्यन्त : (शोक में) हे सखा ! मुझे दुःख से छुड़ा ।

माढव्य : यह तुम्हें क्या हुआ है, सत्पुरुषों को शोक में अधीर होना योग्य नहीं देखा । पवन कैसी ही चले पर्वत को नहीं डिगा सकती ।

दुष्यन्त : हे मित्र ! जिस समय मैंने प्यारी का त्याग किया उसकी ऐसी दशा थी कि अब सुध करके मैं व्याकुल हुआ जाता हूँ ।

दोहा

मैं न लई अबला लगी निज साथिन संग जान ।
हटकि कही रहि रहि यहीं मुनिसुत पिता समान ।।
तब जु दीठि मो तन करी आंसुन भरी रसाल ।
दहति निठुर मेरो हियो मनहु विष-भरी भाल ।।

सानुमती : (आप-ही-आप) अहा ! स्वार्थ कैसा प्रबल होता है कि इसका सन्ताप भी मुझे सुहाता है ।

माढव्य : मेरे विचार में तो यह आता है कि उस भगवती को कोई

देवता उठा ले गया।

दुष्यन्त : ऐसी पतिव्रता को छूने की भी किसमें सामर्थ हो सकती है? मैंने सुना है कि उसकी माँ मेनका अप्सरा है सो उसी की सखियाँ ले गयी होंगी यह शंका मेरे मन में आती है।

सानुमती : (आप-ही-आप) सुध का भूलना अचरज की बात है न कि सुध का आना।

माढव्य : मित्र जो यही बात है तौ उनके मिलने में कुछ बिलम्ब मत जानो।

दुष्यन्त : क्यों यह कैसे जाना?

माढव्य : ऐसे जाना कि माँ-बाप अपनी वेटी को पति वियोग में बहुत काल दुःखी नहीं देख सकते।

दुष्यन्त : हे मित्र!

दोहा

सपना हो कै भ्रम कछू ह्वै माया को जाल।
कै फल मेरे पुन्न कौ प्रगट मिटचो तत्काल॥
वा सुख के फिर मिलन की आस रही कछु नाहिं।
परे मनोरथ जाय मम अब अथाह के माहिं॥

माढव्य : ऐसा मत कहो, देखो मुंदरी ही इस बात का दृष्टान्त है कि खोयी हुई वस्तु फिर मिल सकती है दैव इच्छा सदा बलवान है अकस्मात् भी समागम हो जाता है।

दुष्यन्त : (मुंदरी को देखकर) हाय! यह मुंदरी भी अभागी है क्योंकि ऐसे स्थान से गिरी है जहाँ फिर पहुँचना दुर्लभ है।

दोहा

हे मंदरी तेरो सुकृत मेरो ही सौ हीन।
फल सों जान्यो जात है मैं निरनै करि लीन॥
अधिक मनोहर अरुणनख उन अँगुरिन कों पाय।
गिरी फेर तू आय जब पुन्य गयो निबटाय॥

सानुमती : (आप-ही-आप) जो किसी और के हाथ पड़ती तौ निःसन्देह इस मुंदरी का भाग्य खोटा गिना जाता।

माढव्य : कृपा करके यह तौ कहो कि मुंदरी उस भगवती की अँगुली तक कैसे पहुँची?

सानुमती : (आप-ही-आप) मैं भी यही सुना चाहती थी।

दुष्यन्त : सुनो जब मैं तपोवन से अपने नगर को चलने लगा तब प्यारी ने आँखें भर के कहा कि आर्यपुत्र! फिर कब सुध लोगे।

माढव्य : भला फिर।

दुष्यन्त : तब यह मुंदरी उसकी अँगुली में पहनाकर मैंने उत्तर दिया कि—

दोहा

अक्षर मेरे नाम कौ दिन दिन गिनियो एक।
यह मुंदरी के माहिं तू करि अपने मन टेक॥
निहचै करिके जानियो पिछलो दिन जब होइ।
आवेगो रनवास तें आज लिवावन कोइ॥
परन्तु हाय! मुझ निर्दयी को यह सुध न रही।

सानुमती : (आप-ही-आप) मिलने की अवधि तौ अच्छी रखी थी परन्तु विधाता ने बिगाड़ दी।

माढव्य : फिर वह मुंदरी धींवर की काटी हुई राहू के पेट में कैसे गई?

दुष्यन्त : जिस समय प्यारी ने सचीतीर्थ से आचमन को जल लिया हाथ से गंगाजी में मुँदरी गिर पड़ी।

माढव्य : ठीक है।

सानुमती : (आप-ही-आप) अहा! यही बात है कि इस राजर्षि ने अधर्म्म से डरकर तपस्विनी शकुन्तला के साथ ब्याह होने में सन्देह किया परन्तु मुंदरी के देखने से इतना अनुराग इसे क्योंकर हुआ।

दुष्यन्त : इसीलिए मैं इस मुंदरी की निन्दा करता हूँ।

माढव्य : (आप-ही-आप) इसने तौ उन्मत्तों का मार्ग लिया है।

दुष्यन्त :

दोहा

यह तोपै जैसी बनी अरी मूंदरी हाय।
उन कोमल अँगुरीन तजि पैठी जल में जाय ।।

परन्तु :

नाहिं अचेतन वस्तु को गुन औगुन को ज्ञान।
मैं चेतन ह्वै क्यों कियो प्यारी को अपमान ।।

माढव्य : (आप-ही-आप) यह तौ मुंदरी के ध्यान में है मैं क्यों भूखा मरूँ।

दुष्यन्त : हे प्यारी ! मैंने तुझे निष्कारण त्यागा अब दयालु होकर मुझ तप्त हृदय को फिर दर्शन दे।

[एक स्त्री चित्र हाथ में लिये आती है।]

चतुरिका : महाराज ! देखिए महारानी का चित्र यह है।

[चित्र दिखलाती है।]

माढव्य : हे सखा ! यह चित्र बहुत ठीक बना है जो वस्तु जहाँ जैसी चाहिए वहाँ वैसी लिखी है मेरी दृष्टि तौ इसकी ऊँचाई-निचाई में धोखा-सा खा जाती है।

सानुमती : (आप-ही-आप) अहा ! धन्य है इस राजर्षि की निपुनता चित्र में सखी मुझे ऐसी दीखती है मानों साक्षात सामने खड़ी है।

दुष्यन्त :

दोहा

जो जो बात न चित्र में सक्यो यथारथ लाय।
सो सो मैंने अन्यथा मन तें दई बनाय।



तऊ रूप लावन्य छबि वाके तन की आय।
झलकति सी रेखान में कछु कछु परति लखाय।

सानुमती : (आप-ही-आप) यह वचन स्नेह के बड़े पछतावे के योग्य ही हैं और निरभिमान के भी।

माढव्य : यहाँ तौ तीन भगवती दीखती हैं और सभी देखने योग्य हैं इनमें भगवती शकुन्तला कौन-सी है।

सानुमती : (आप-ही-आप) इसने उस रूपवती का दर्शन नहीं किया इससे इसकी आँखें निष्फल हैं।

दुष्यन्त : भला बतला तौ इनमें किसको तू शकुन्तला जानता है ?

माढव्य : मेरे जान तौ यही शकुन्तला होगी जिसके केश बन्ध ढीला होकर बालों से फूल गिरते हैं शरीर कुछ थका हुआ-सा दीखता है पसीने की बूंदें मुख पर ढलक रही हैं निराली भाँति बाँह फैला रही है और इस सींचें हुए नयी कोंपलों-वाले आम के पास खड़ी है आस-पास दोनों सखी होंगी।

दुष्यन्त : तू बड़ा प्रवीन है देख इस चित्र में ये मेरे सात्विक भाव के चिन्ह हैं।

दोहा

लगी पसीजी आँगुरी दीखति रेख मलीन।
आँसू गिरे कपोल पै रंग फीके करि दीन ॥

हे चतुरिका, अभी इस विनोदस्थान का चित्र पूरा नहीं बना तू जाकर चित्र बनाने की सामग्री ले आ।

चतुरिका : लो माढव्य जब तक मैं आऊँ तुम चित्रपाटी थामे रहो।

दुष्यन्त : ला तब तक हमीं लिए रहेंगे। (चित्र हाथ में लेता है।)

[चतुरिका जाती है।]

दुष्यन्त : हाय !

चौपाई

जब प्यारी मो सन्मुख आई। करी अधिक मैंने निठुराई ॥
चित्र लिखी अब लखि 2 वाकों। फिर फिर आदर देत न थाकों ॥

बहती नदी उतरि जिमि कोई। मृगतृष्णा कों धावत होई ॥
सो गति आनि भई अब मेरी। होति पीर पछतात अनेरी ॥

माढव्य : (आप-ही-आप) यह तौ नदी उतर मृगतृष्णा में पड़ा है। (प्रकट) मित्र ! अब इसमें क्या लिखना रहा है ?

सानुमती : (आप-ही-आप) मेरे जान तौ अब राजा उन स्थानों को लिखेगा जो मेरी सखी को प्यारे थे।

दुष्यन्त : सुन—

दोहा

लिखन काज अब ही रह्यो बहत मालिनी नीर।
हंसन की जोड़ी सुभग राजति जाके तीर ॥
दुहूँ ओर पावन लिखूँ हिमवत चरन पहार।
बैठे हरिन सुहावने जिन पै करत जुगार ॥
चाहत हूँ औरहु लिखूं तरुवर एक अनूप।
डारन पै बल्कल बसन परे लगन कों धूप ॥
नीचे ताही रूख के हरिनी लिखूं बनाय।
दृग कर सायर सींग तें बायों रही खुजाय ॥

माढव्य : (आप-ही-आप) मेरे जान तौ इसे चाहिए कि चित्रपाटी को डाढ़ीवाले तपस्वियों से भर दे।

दुष्यन्त : हे मित्र ! यहाँ शकुन्तला का एक आभूषन लिखना चाहता था सो मैं भूल गया।

माढव्य : कैसा आभूषन ?

सानुमती : (आप-ही-आप) जैसा वन-युवतियों का होता है।

दुष्यन्त : हे मित्र !

दोहा

कानन पौन लिख्यो गयो सिरस फूल सुकुमार।
लटकत आइ कपोल पै जाके केसर बार ॥
उरहू पै लिखनी रही कमलनाल की माल।
शरद चन्द्र की किरन सम कोमल और रसाल ॥

माढव्य : मित्र ! यह भगवती अपने मुख को रक्त-कमल के पल्लव समान हाथ से छपाए चकित-सी क्यों खड़ी है। (चित्त लगाकर देखता है।) अहा ! मैं जान गया। यह दासी-जाया भौंरा फूलों के रस का चोर भगवती के मुख पर घूमता है।

दुष्यन्त : इस धृष्ट भौंरे को दूर करो।

माढव्य : धृष्टों को दण्ड देने की सामर्थ तुम्हीं को है तुम्हीं इसे दूर कर सकोगे।

दुष्यन्त : ठीक कहा है पुष्प-लताओं के प्यारे पाहुने तू यहाँ घूमने क्यों आया है ?

दोहा

बैठी भौंरी फूल पै हरति तेरी गैल।
लगी प्रीति मधु ना पिये प्यासीहू बिन छैल ॥

सानुमती : (आप-ही-आप) यह बरजना बहुत उत्तम रीति से हुआ।

माढव्य : भौंरे की जाति ढीठ होती है हटाए से नहीं हटती।

दुष्यन्त : अरे भौंरे जो तू मेरी आज्ञा न मानेगा तौ सुन—

शिखरनी

प्रिया को है बिम्बाधर मृदुल ज्यों पल्लव नयो।
लियो धीरे धीरे रहसि रस मैंने रति समै ॥
छुएगो जो तू रे भँवर कहुँ याकों तनकहू।
करूँ तोकों बन्दी पकरि प्रफुला के उदार में ॥

माढव्य : ऐसे कड़े दण्ड से क्यों न डरेगा (हँसकर आप-ही-आप) यह तौ सिड़ी हो गया है इसके साथ रहने से मैं भी ऐसी बातें कहने लगा। (प्रकट) हे सखा ! यह प्यारी नहीं है चित्र है।

दुष्यन्त : कैसा चित्र ?

सानुमती : (आप-ही-आप) इस समय तौ मुझे भी ज्ञान न रहा कि यह चित्र है फिर इस राजा को क्यों कर रहा होगा।

दुष्यन्त : अरे मित्र ! तैंने बुरा किया।

दोहा

मैं दरशन सुख लेत हों इकटक चित्त लगाय।
साक्षात ठाड़ी मनो सन्मुख मरे आय ॥
तौ लौं तैं मोकों वृथा सुरति दिवाई मित्र।
अब प्यारी फिर रहि गई लिखी चित्रकी चित्र ॥

[आँसू डालता है।]

सानुमती : (आप-ही-आप) विरह की गति निराली है जिधर देखता है इसे क्लेश ही दृष्टि आता है।

दुष्यन्त : हे मित्र ! अब मैं यह घड़ी-घड़ी का दुःख कैसे सहूँ ?

दोहा

नित के जागत मिटि गयो वा संग सुपन मिलाप।
चित्र दरसहू कों लग्यो आँखिन आँसू पाप ॥

सानुमती : (आप-ही-आप) तैंने शकुन्तला के अपमान का दुःख सब धो दिया।

[चतुरिका आती है।]

चतुरिका : स्वामी की जय हो ! मैं रंगों का डिब्बा लिये इधर आती थी।

दुष्यन्त : तब क्या हुआ ?

चतुरिका : महारानी वसुमती ने तरलिका सहित मार्ग में आकर मेरे हाथ से डिब्बा छीन लिया और कहा कि मैं ही महाराज को चलकर दूँगी।

माढव्य : अच्छा हुआ कि तू बच आयी।

चतुरिका : रानी का वस्त्र एक काँटे के वृक्ष में अटक गया उसे छुड़ाने में तरलिका लगी तब तक मैं निकल आयी।

दुष्यन्त : हे सखा ! मानगर्वित रानी वसुमती आती है तू इस चित्र को छुपा ले।

माढव्य : यों क्यों न कहो कि मुझे छुपा ले (यह कहता चित्र को लेकर

उठता है) जब तुम रनवास के काल कूट से छूट जाओ तौ मुझे मेघप्रतिच्छन्द भवन से बुला लेना।

[वेग-वेग जाता है।]

सानुमती : (आप-ही-आप) दूसरी में आसक्त होकर भी यह पहली प्रीति निबाहता है परन्तु इस रानी में इसका अनुराग थोड़ा ही दीखता है।

[प्रतीहारी पत्र हाथ में लिये आती है।]

प्रतीहारी : महाराज की जय हो।

दुष्यन्त : हे प्रतीहारी ! तैंने महारानी वसुमती को तौ मार्ग में नहीं देखा।

प्रतीहारी : हाँ महाराज ! मुझे मिली तौ थीं परन्तु मेरे हाथ में चिट्ठी देखकर उलटी लौट गयीं।

दुष्यन्त : रानी समय को पहचानती है मेरे काम में विघ्न डालना नहीं चाहती।

प्रतीहारी : महाराज ! मन्त्री ने यह बिनती की है कि आज भण्डार में रुपया बहुत आया उसके गिनने से अवकाश न था इसलिए केवल एक ही पुरकाज हुआ है सो इस पत्र में लिख दिया है आप देख लें।

दुष्यन्त : लाओ चिट्ठी दिखलाओ।

[प्रतीहारी चिट्ठी देती है।]

दुष्यन्त : (चिट्ठी बाँचता है) "समुद्र व्यवहारी धन मित्र नाम सेठ नाव में डूबकर मर गया पुत्र कोई नहीं छोड़ा उसका धन राज भण्डार में आना चाहिए"। (शोक से) हाय ! नपुत्री होना कैसे शोक की बात है। परन्तु जिसके इतना धन था उसकी स्त्री भी कई होंगी इसलिए पहले यह पूछ लेना चाहिए कि उन स्त्रियों में कोई गर्भवती है कि नहीं।

प्रतीहारी : महाराज सुना है कि उसकी एक स्त्री का जो अयुध्या के सेठ

की बेटी है अभी गर्भाधान संस्कार हुआ है।

दुष्यन्त : गर्भ का बालक पिता के धन का अधिकारी होता है जा मन्त्री से ऐसा ही कह दे।

प्रतीहारी : जो आज्ञा।

[बाहर जाती है।]

दुष्यन्त : ठैर तौ।

प्रतीहारी : (फिर आकर) महाराज ! मैं आयी।

दुष्यन्त : इससे क्या है सन्तान हो कि न हो।

दोहा

केवल पापिन के बिना मम परजा के लोग।
जा जा प्यारे बन्धु की बिधि बस लहैं वियोग॥
गिने नृपति दुष्यन्त कों ताही ताकी ठौर।
नगर ढिढोरा देहु यह कहो कछू मति और॥

प्रतीहारी : यही ढिंढोरा हो जायगा।

[बाहर जाकर फिर आती है।]

प्रतीहारी : महाराज की आज्ञा ने नगर में ऐसा आनन्द दिया है जैसे योग्य समय की वर्षा देती है।

दुष्यन्त : (गहरी श्वास भरकर) जिस कुल में आगे को सन्तान नहीं होती उसकी सम्पति मूल पुरुष के मरे पीछे यों ही पराये घर जाती है। किसी दिन मेरे पीछे पुरुवंश का वैभव भी ऐसा रह जायगा जैसे अकाल में बोई हुई भूमि।

प्रतीहारी : ईश्वर ऐसा अमंगल न करे।

दुष्यन्त : धिक्कार है मुझे कि मैंने प्राप्त हुए सुख को लात मारी।

सानुमती : (आप-ही-आप) निश्चय इसने अपनी निन्दा मेरी सखी की सुधि करके की है।

दुष्यन्त :

दोहा

वंश प्रतिष्ठा मैं तजी निज पत्नी निष्पाप।
बैठ्यो जाके गरभ में जन्म लेन हित आप ॥
समय पाय बोई मनो बसुन्धरा कृषिकार।
त्यागि दई फिर आपही फल आवन की बार ॥

सानुमती : (आप-ही-आप) तेरा बंश अटूट रहेगा।

चतुरिका : (प्रतीहारी से) हाय ! सेठ के इस वृत्तान्त ने स्वामी की क्या गति कर दी। इनका चित्त बहलाने के लिए जा तू माढव्य को मेघ प्रतिच्छद भवन से लिवा ला।

प्रतीहारी : ठीक कहती है।

[बाहर जाता है।]

दुष्यन्त : धिक्कार है मुझे जिसके पित्र इस संशय में पड़े होंगे कि—

सोरठा

कुल हमरे में होइ यातें पाछें कौन जो।
बिधिवत कव्य सँजोइ नित्त हमें तिरपति करे ॥

दोहा

पुत्रहीन मैं देतु जल मिलत उन्हें अब सोइ।
ताहू में ते बचत जो अश्रु पोंछि कर धोइ ॥

[शोक में मूर्छित होता है।]

चतुरिका : (अचम्भे से देखकर) महाराज ! सावधान हों।

सानुमती : (आप-ही-आप) इस समय इसकी ऐसी दशा है जैसे सन्मुख दीपक होते हुए भी ऊपर अंचल आ जाने से किसी को अँधेरा ही दीखता हो। अभी इसका दुःख दूर कर देती परन्तु क्या करूँ इन्द्र की माता के मुख से शकुन्तला को यों समझाते सुन

चुकी हूँ कि यज्ञ भाग के अभिलाषी देवता ऐसा करेंगे जिससे तेरा भरता थोड़े ही काल में तुझ धर्म्म-पत्नी को आनन्द देगा; इसलिए जब तक वह शुभ घड़ी आवे तब तक मुझे कुछ न करना चाहिये। हाँ, इतना तो करूँगी कि अपनी प्यारी सखी को इस वृत्तान्त से धीरज बँधाऊँ।

[उड़ जाती है।]

(नेपथ्य में) कोई बचाओ कोई बचाओ।

दुष्यन्त : (सावधान होकर और कान लगाकर) हैं ! यह तौ माढव्य का-सा रोना है कोई है रे ?

[प्रतीहारी आती है।]

प्रतीहारी : हे देव ! आपत्ति में पड़े हुए अपने मित्र को बचाओ।

दुष्यन्त : किसने इसका अपमान किया है ?

प्रतीहारी : बिना दीखते हुए किसी भूत-प्रेत ने इसे पकड़कर मघप्रतिच्छद भवन की मुँडेल पर रख दिया है।

दुष्यन्त : अरे दुष्ट ! मेरे मित्र को मत सता। क्या मेरे घर में भी भूत-प्रेत आने लगे ? सच है—

दोहा

अपने हू पग को भरम आप न जान्यो जात।
सावधान ह्वै ना चलै नित ठोकर नर खात ॥
तौ फिर कैसे मैं सकों जान पराई बात।
को का मेरी प्रजा में का का मारग जात ॥

(नेपथ्य में) सखा चलिए ! चलिए !!

दुष्यन्त : (सुनता और दौड़ता हुआ) डरे मत मित्र कुछ भय नहीं है। (नेपथ्य में) भय क्यों नहीं है यह तौ मेरे कंठ को पकड़े ईख की नाईं ऐंठे डालता है।

दुष्यन्त : (चारों ओर देखता हुआ) है रे कोई मेरा धनुष लावे।

यवनी : (धनुष लिये आती है)—महाराज ! हस्तावार सहित धनुष यह है।

[दुष्यन्त धनुष लेता है।]

(नेपथ्य में)—

दोहा

प्यासो तेरे कंठ के सद लोहू कौ आज।
तोहि तरफतो मारिहों ज्यों पशु कों मृगराज ॥
अब कित है दुष्यन्त जो दैन अभय को दान।
तुरतहि अपने धनुष पै तानि चढ़ावत बान ॥

दुष्यन्त : (क्रोध से) हैं ! यह तौ मुझे चिनोती देता है। अरे मरी लोथ के खानेवाले खड़ा रह ! मैं आया अब तेरी मृत्यु समीप पहुँची। (धनुष चढ़ाकर) प्रतीहारी ! सीढ़ी दिखला।

प्रतीहारी : गैल यह है, महाराज !

[वेग-वेग जाते हैं।]

दुष्यन्त : (चारों ओर देखकर) हैं ! यहाँ तौ कोई नहीं है। (नेपथ्य में) बचाओ कोई मुझे बचाओ। महाराज ! मैं तुम्हें देखता हूँ तुम्हीं मुझे नहीं देखते। इस समय मैं अपने जीने से ऐसा निरास हो रहा हूँ जैसे बिलाव का पकड़ा मूसा।

दुष्यन्त : हे मायाजाल के अभिमानी ! तू मुझे नहीं दीखता तौ क्या है मेरे बान को तो दीखेगा अब देख मैं बान चढ़ाता हूँ जौ—

सोरठा

तो पापी कों मारि लेगो दुर्जहि बचाय यों।
जैसे लेत निकारि हंस नीर तें दूध कों ॥

[धनुष पर बान चढ़ाता है।]

[माढव्य को छोड़कर मातलि आता है।]



मातलि :

दोहा

दीने तेरे अस्त्र कों हरि ने असुर बताय।
तिनही पै किन लेहि तू अपना धनुष चढ़ाय ।।
मित्रन पै छोड़त नहीं सज्जन तीखे बान ।
पै डारत नित प्रीति की मृदुल दीठि सुखदान ।।

दुष्यन्त : (अस्त्र उतारता हुआ) आओ इन्द्र के सारथी तुम भले आये।

[माढव्य आता है।]

माढव्य : हैं ! जो मुझे बलिपशु की भाँति मारे डालता था उसका यह आदर करता है।

मातलि : (मुसुकाकर) महाराज ! जिस काम के लिए इन्द्र ने मुझे आपके पास भेजा है सो सुन लो।

दुष्यन्त : कहो, मैं सुनता हूँ।

मातलि : कालनेमि के वश में दानवों का ऐसा एक गण प्रबल हुआ है कि उसका जीतना इन्द्र को कठिन हो रहा है।

दुष्यन्त : यह तौ मैं आगे ही नारद के मुख से सुन चुका हूँ।

मातलि :

दोहा

जीत्यो गयो न इन्द्र पै बल सों जो रिपुवंस।
रन अगमानी तुम किए करन ताहि विध्वंस ।।
अन्धकार जिमि राति कौ सकत न भानु मिटाय।
पै रजनीपति दरस तें सहजहि जाय हिलाय ।।

अब तुम हथ्यार बाँधो और इन्द्र के रथ पर चढ़कर विजय को चलो।

दुष्यन्त : देवराज ने यह आदर देकर मेरे ऊपर बड़ी कृपा की; परन्तु यह कहो कि माढव्य को तुमने ऐसा क्यों सताया ?

मातलि : किसी कारण आपको मैंने उदास देखा तब रोस दिलाने के लिए यह काम किया था क्योंकि—

दोहा

इंधन के टारे बिना बढ़ति न पावक लोइ ।
फण न उठावत नागहू को छेड्यो नहिं होइ ।।
नर न लेत अभिमान मन बिना क्षोभ कछ पाय।
कहियत इन तीनोन के बहुधा यही सुभाय ।।

दुष्यन्त : (माढव्य से हौले) हे सखा ! देवपति की आज्ञा उल्लंघन योग्य नहीं है इसमें तू पिशुन मन्त्री को यह समाचार सुनाकर मेरी ओर से कह देना कि—

दोहा

लग्यो और ही काम में जब लग मरो चाप।
तबलग परजा पालि तू अपनी मति सों आप ।।

माढव्य : जो आज्ञा।

[जाता है।]

मातलि : महाराज ! रथ पर चढ़िये।

[दुष्यन्त रथ पर चढ़ता है और सब जाते हैं।]

अंक 7

[दुष्यन्त और मातलि रथ पर बैठे हुए आकाश से उतरते हैं।]

दुष्यन्त : हे मातलि ! यह तौ सच है कि मैंने इन्द्र की आज्ञा पाली परन्तु फिर मैं अपने को इस बड़े आदर के योग्य नहीं जानता हूँ जो देवनायक ने मुझे दिया।

मातलि : (हँसकर) महाराज ! दोनों को यही संकोच है।
तुम हरि कौ एतौ कियो यदपि बड़ो उपकार।
ताहि न मानत हो कछ देखि इन्द्र सत्कार ।।
जानि तुम्हारी वीरता चकित वहू मन माँहि।
दियो इतो आदर तऊ गिनत ताहि कछु नाँहि ।।

दुष्यन्त : ऐसा मत कहो इन्द्र ने बिदा करते समय मेरा इतना सम्मान किया जितने कि आशा न थी क्योंकि देवताओं के देखते मुझे अपनी आधी गद्दी पर बिठाया और—

चौपाई

जाहि मिलन की धरि मन आसा। ठाड़ो हो जयन्तहू पासा ।।
सो माला मंदार सुमन की। लै उर तें लिपटी चन्दन की ।।
हँसि मुसकाय सुवन की ओरी। कृपा दीठि मो तन हरि मोरी ।।
अपने कर मेरे गल डारी। यह आदर दीनो मुहि भारी ।।

मातलि : हे राजा ! देवताओं से आप किस-किस सत्कार के योग्य



नहीं हो !

दोहा

सुर पुर कौ द्वै ही कियो दानव कंटक दूर।
आगे नख नरसिंह के अब तेरे सर क्रूर।।

दुष्यन्त : हमको इस यश का मिलना भी देवनायक की महिमा का ही फल है क्योंकि—

चौपाई

कारज सिद्ध बड़ो जब होई। सेवक जन हाथन तें कोई।।
कारन तासु जानि मन लीजे। स्वामि कृपा सन्देह न कीजै।।
अरुण कहाँ इतनो बल पावे। रैनि अँधेरो आय मिटावे।।
देहि ठौर वाकों यदि नाहीं। रबि अपने आगे रथ माहीं।।

मातलि : ठीक है। (थोड़ी दूर चलकर) हे राजा! इधर दीठि करके अपने स्वर्ग तक पहुँचे हुए यश का गौरव देखो—

दोहा

सुर युवतिन अंगराग तें बचे कछू जो रंग।
तिनसों देवा लिखत ये तेरे चरित प्रसंग।।
आछे सुरतरु पवन पै मधुरे गीत बनाय।
सोचत बैठे सरसपद जहरो ध्यान लगाय।।

दुष्यन्त : हे मातलि दानवों को मारने के उत्साह में पहले दिन इधर से जाते हुए हमने स्वर्ग मार्ग भलीभाँति नहीं देखा था अब तुम कहो इस समय हम पवनों के किस पन्थ में चलते हैं?

मातलि :

दोहा

यह मग हरि पावन कियों दूजो पेंड बढ़ाय।
है याकी वह पवन जो परिवह जाति कहाय।।

वही पवन नभगंग कों तनिप्रति रही बहाय।
बाँटि किरन इत उत वही जोतिन देति घुमाय।।

दुष्यन्त : हे मातलि, इसी से मेरा आत्मा बाहर-भीतर के इन्द्रियों सहित आनन्द को पहुँचा है। (रथ के पहियों को देखकर) अब तो हम मेघों के मार्ग में उतर आये।

मातलि : यह आपने क्यों कर जाना?

दुष्यन्त :

दोहा

निकसि अरन के बीच ह्वै इत उत चातक जात।
तुरगन हूँ के अंग पै बिज्जु छटा लहरात।।
भीगे पहिया मेह में रथ ही देत बताय।
नीर भरे बदरान पै अब पहुंचे हम आय।।

मातलि : अभी एक क्षण में आप अपने राज्य में पहुँचते हैं। (नीचे देखकर) वेग से उतरने में मनुष्य लोक अचरज-सा दीखता है।

चौपाई

दीखति शैल शिखर उठती सी। पहुमि जात नीचे खसती सी।।
रहे रुख जो पात ढके से। लगत कंध तिनके निकसे से।।
सरित लखी जो मनहु सुखानी। परत दीठि उनमें अब पानी।।
आवत लोकहु ओर हमारी। जिमि ऊपर कों दियो उछारी।।

मातलि : आपने भला देखा। (पृथ्वी को आदर से देखकर) अहा! मनुष्यलोक कैसा रमनीक दिखायी देता है।

दुष्यन्त : मातलि बतलाओ तो पूरब-पश्चिम के समुद्रों के बीच यह कौन-सा पहाड़ है जिससे सुनहरी धारा ऐसी निकलती है मानों सन्ध्या के मेघ से अर्गला।

मातलि : महाराज यह तपस्या का क्षेत्र किन्नरों का हेमकूट नाम पर्वत है।

दोहा

सुत मरीचि नाती कुबज देव दनुज के तात।
तपत यहाँ परजापती सहित सुरन की मात ।।

दुष्यन्त : तौ कल्याण प्राप्त करने के इस अवसर को चूकना न चाहिए आओ उनको प्रणाम करके चलेंगे।

मातलि : यह विचार आपका बहुत उत्तम है।

[दोनों उतरते हैं।]

दुष्यन्त : (आश्चर्य से)---

दोहा

भयो न इन पहिय्यान तें कछ तनकहू सोर।
धूरि उठति दीखी नहीं मोकों काहू ओर ।।
जा अपने रथ कों रह्यो तू मातलि सन्धानि।
लग्यो न भूतल आय के उतरत परचो न जानि ।।

मातलि : हे राजा ! आपके और इन्द्र के रथ में इतना ही तौ अन्तर है।

दुष्यन्त : कश्यप का आश्रम कहाँ है?

मातलि : (हाथ से दिखलाकर)—

चौपाई

जहँ वह अचल ठूँठ की नाई। ठाड़ो मुनि मुख करि रवि माई ।।
आधे तन बाँबी चढ़ि आई। सर्प तुचा छाती लपटाई ।।
कंठ परी अधसूखी बेली। पीड़ित अंग कसी जिमि सेली ।।
जटाजूट कंधन पर छाए। जिन में पंछिन नीड़ बनाए ।।

दुष्यन्त : ऐसे उग्र तपवाले को नमस्कार है।

मातलि : (घोड़ों की रास खैंचकर) महाराज ! अब हम प्रजापति के उस आश्रम में आ गये हैं जो अदिती के सींचे हुए मन्दारों से सुशोभित है।

दुष्यन्त : यह तौ स्वर्ग से भी अधिक निर्वृत्ति स्थान है इस समय मैं

ऐसा हो रहा हूँ मानों अमृत के कुण्ड में नहाता हूँ।

मातलि : (रथ ठैराकर) महाराज ! अब उतर लीजिए।

दुष्यन्त : (रथ से उतरकर) तुम रथ छोड़कर कैसे चलोगे ?

मातलि : मैंने यत्न कर दिया है रथ आपसे आप यहाँ रहेगा चलिये मैं भी आपके साथ चलता हूँ। (रथ से उतरता है) महाराज ! इस मार्ग आओ महात्मा-ऋषियों का तपोवन देखो।

दुष्यन्त : मैं आश्चर्य से देखता हूँ---

चौपाई

करत और मुनि तपि तपि आसा। जा थल माहिं लेन हित बासा ।।
तहीं तपत ये तापस लोगू। त्यागि सकल इन्द्रिन के भोगू ।।
यहाँ कल्पतरु कुञ्ज अनूपा। साधन अनिल वृत्ति अनुरूपा ।।
नित कृति काजें नीर सुहाए। हेम कमल रज मिलि पियराये ।।

दोहा

बैठन काज ध्यान कों मणिसिल बिछीं अनेक।
यहाँ अप्सरन निकटहू निबहति संजम टेक ।।

मातलि : सत्पुरुषों की अभिलाषा सदा ऊँची ही रहती है। (इधर-उधर फिरकर) कहो वृद्ध शाकल्य इस समय महात्मा कश्यप क्या करते हैं क्या कहा दक्ष की बेटी ने जो पतिब्रत धर्म्म पूछा था वह उनको और ऋषिपत्नियों को सुना रहे हैं।

दुष्यन्त : (कान लगाकर) मुनियों के पास अवसर देखकर जाना चाहिए।

मातलि : (राजा की ओर देखकर) आप इस अशोक वृक्ष की छाया में विश्राम करिए तब तक मैं आपके आने का सन्देशा अवसर देखकर इन्द्र के पिता से कह आऊँ।

[बैठता है।]

दुष्यन्त : जैसा तुम्हें भावे।

मातलि : मैं इस काम को करके अभी आता हूँ।

दुष्यन्त : (सगुन देखकर)—

दोहा

सिद्ध मनोरथ होन की मोहिं कछू नहिं आस।
फिर तू फरकत बाँह क्यों वृथा करन उपहास॥
सन्मुख सुख आयो कहूँ नींद्यो गयो जु होइ।
पलटि दुःख बनि जात है निश्चय जानो सोइ॥

(नेपथ्य में) अरे देख ! चपलता मत कर क्या तू अपनी बान नहीं छोड़ेगा !

दुष्यन्त : (कान लगाकर) हैं ! इस स्थान में चपलता का क्या काम यह ताड़ना किसको हो रही है। (जिधर बोल सुनाई दिया उधर देखकर आश्चर्य करके) अहा ! यह किसका पराक्रमी बालक है जिसे दो तपस्विनी रोक रही हैं।

दोहा

आधी पीयो मातु थन जा सावक मृगराज।
ताहि घसीटत केश गहि यह शिशु खेलनकाज॥

[एक बालक सिंघ के बच्चे को घसीटता हुआ लाता है और दो तपस्विनी उसे रोकती हुई आती हैं।]

बालक : अरे सिंघ ! तू अपना मुँह खोल मैं तेरे दाँत गिनूंगा।

पहिली तपस्विनी : हे अन्याई ! तू इन पशुओं को क्यों सताता है हम तौ इन्हें बाल-बच्चों के समान रखती हैं। हाय ! तेरा साहस बढ़ता ही जाता है तेरा नाम ऋषियों ने सर्वदमन रक्खा है सो ठीक ही है।

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) अहा ! क्या कारण है कि मेरा स्नेह इस बालक में ऐसा होता आता है जैसा पुत्र में होता है हो न हो यह हेतु है कि मैं पुत्रहीन हूँ।



दूसरी तपस्विनी : जो तू बच्चे को छोड़ न देगा तौ यह सिंघिनी तुझ पर दौड़ेगी ।

बालक : (मुसुकाकर) ठीक है सिंघिनी का मुझे ऐसा ही डर है ।

[मुँह चिढ़ाता है ।]

दुष्यन्त :

दोहा

दीखत बालक मोहि यह तेजस्वी बलबीर ।
काठ काज जैसे अगिनि ठाड़ो है मति धीर ।।

पहली तपस्विनी : हे प्यारे बालक ! तू सिंघ के बच्चेको छोड़ दे मैं तुझे खिलौना दूंगी ।

बालक : कहाँ है ला दे दे ।

[हाथ पसारता है ।]

दुष्यन्त : इसके तौ लक्षण भी चक्रवर्तियों के से हैं क्योंकि—

दोहा

माँगि खिलौना लैन कों जबहि पसार्‌यो हाथ ।
जालगँथी सी आँगुरी सब दीखीं एक साथ ।।
मनहुं खिलायो कमल कछ प्रात अरुण ने आय ।
नैक न पखुरिन बीच में अन्तर परत लखाय ।।

दूसरी तपस्विनी : हे सुवृता, यह बातों से न मानेगा जा मेरी कुटी में एक मिट्टी का मोर ऋषिकुमार मारकण्डेय के खेलने का रक्खा है उसे ले आ ।

पहली तपस्विनी : मैं अभी लिये आती हूँ ।

[जाती है ।]

बालक : तब तक मैं इसी सिंघ के बच्चे से खेलूँगा ।

[यह कहकर तपस्विनी की ओर हँसता है ।]

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) इसके खिलाने को मेरा जी कैसा ललचता है।

घनाक्षरी

हाँसी बिनहेत माहिं दीखति बतीसी काछू,
निकसी मनो है पाँति ओछी कलिकान की ।
बोलन चहत बात टूटी सी निकसि जात,
लागति अनूठी मीठी बानी तुतलान की ।।
गोद तें न प्यारो और भावे मन कोई ठाँव,
दौरि दौरि बैठें छोड़ि भूमि अंगनान की ।
धन्य धन्य वे हैं नर मैले जो करत गात,
कनिया लगाइ धूरि ऐसे सुवनान की ।।

दूसरी तपस्विनी : यह मेरी बात तौ कान नहीं धरता । (इधर-उधर देखकर) कोई ऋषिकुमार यहाँ है। (दुष्यन्त को देखकर) हे महात्मा ! तुम्हीं आओ कृपा करके इस बली बालक के हाथ से सिंह के बच्चे को छुड़ाओ यह इसे खेल में ऐसा पकड़ रहा है कि छुड़ाना कठिन है।

दुष्यन्त : अच्छा ।

[लड़के के पास जाकर और हँसकर ।]

चौपाई

आश्रम बासिन की यह रीती । पशुपालन में राखत प्रीती ।।
सो ऋषि सुत दूषित त कीनी । उलटी वृत्ति यहाँ क्यों लीनी ।।



करत जन्महीं तें ये काजा। जो नहिं सोहत मुनिन समाजा ॥
तैं यह कियो तपोवन एसो। कृष्ण सर्प शिशु चन्दन जैसो ॥

दूसरी
तपस्विनी : हे बड़भागी। वह ऋषिकुमार नहीं है।

दुष्यन्त : सत्य है यह तो इसके आकार सादृश्य काम ही कहे देते हैं परन्तु मैंने तपोवन में इसका बास देख ऋषिपुत्र जाना था। (जैसी मन में लालसा है लड़के का हाथ अपने हाथ में लेकर आप-ही-आप) अहा !

दोहा

ना जानूं का बंश को अंकुर यहै कुमार।
मो तन एतौ सुख भयो जाहि छुअत एक बार ॥
वा बड़भागी के हिये कितो न होय उमंग।
उपज्यो जाके अंग ते ऐसो याको अंग ॥

तपस्विनी : (दोनों की ओर देखकर) बड़े अचम्भे की बात है।

दुष्यन्त : तुमको क्यों अचम्भा हुआ ?

तपस्विनी : इसलिए हुआ कि इस बालक की और तुम्हारी उन्हार बहुत मिलती है और तुम्हें जाने बिना भी इसने तुम्हारा कहना भी मान लिया।

दुष्यन्त : (लड़के को खिलाता हुआ) हे तपस्विनी, जो यह ऋषिपुत्र नहीं तौ किस वंश का है ?

तपस्विनी : यह पुरुवंशी है।

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) यह हमारे वंश का कैसे हुआ और इस भगवती ने मेरी उन्हार का इसे क्यों कहा हाँ पुरुवंशियों में यह रीति तो निश्चय है कि—

दोहा

छितिपालन के कारने पहले लेत निवास।
जाय भवन ऐसेन में जहँ सब भोग-बिलास ॥

पाछें वन में बसत हैं लै तरवर की छाँह।
इन्द्री जीतन कौ नियम धरि एकहि मन माँह॥

(प्रकट) परन्तु यह स्थान ऐसा नहीं है जहाँ मनुष्य अपने बल से आ सके।

दूसरी तपस्विनी : तुम सच कहते हो इसकी माँ मेनका नाम अप्सरा की बेटी है उसी के प्रताप से इसका जन्म देवपितर के इस तपोवन में हुआ है।

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) यह दूसरी बात आशा उपजानेवाली हुई। (प्रकट) भला इसकी माँ किस रार्जषि की पत्नी है।

दूसरी तपस्विनी : जिसने अपनी विवाहिता स्त्री को बिना अपराध छोड़ दिया उसका नाम कौन लेगा ?

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) यह कथा तौ मुझी पर लगती है अब इस बालक की माँ का नाम पूछूँ। (सोचकर) परन्तु पराई स्त्री का वृतान्त पूछना अन्याय है।

[तपस्विनी मिट्टी का मोर लिये हुए आती है।]

तपस्विनी : हे सर्वदमन ! यह शकुन्तलावण्य देख।

बालक : (बड़े चाव से देखकर) कहाँ है शकुन्तला मेरी माँ ?

दोनों तपस्विनी : यह माँ के प्यारे नाम से धोखा खा गया।

दूसरी तपस्विनी : मुन्ना मैंने तौ यह कहा था कि इस मिट्टी के सुन्दर मोर को देख।

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) क्या इसकी माँ का नाम शकुन्तला है ? हुआ करे एक नाम के अनेक मनुष्य होते हैं। कहीं मुझे दुःख देने को नाम का उच्चारण ही मृगतृष्णा न बनाया हो।

बालक : मुझे यह मोर बहुत अच्छा लगता है।

[खिलौने को लेता है।]

पहली तपस्विनी : (घबराकर) हाय ! हाय ! इसकी बाँह से रक्षा बन्धन कहाँ गया ?

दुष्यन्त : घबड़ाओ मत जब यह नाहर के बच्चे से खेल रहा था इसके हाथ से गण्डा गिर गया सो यह पड़ा है।

[गण्डा उठाने को झुकता है।]

दोनों तपस्विनी : मत उठाओ। हाय ! इसने क्यों उठा लिया ?

[दोनों अचम्भे से छाती पर हाथ रखकर एक-दूसरी की ओर देखती हैं।]

दुष्यन्त : तुमने मुझे इसके उठाने से किसलिए बरजा ?

दूसरी तपस्विनी : सुनो महाराज ! इस गण्डे का नाम अपराजित है जिस समय इस बालक का जातकर्म्म हुआ महात्मा मरीचि के पुत्र कश्यप ने यह दिया था इसमें यह गुन है कि कदाचित् धरती पर गिर पड़े तौ इस बालक को और इसके माँ-बाप को छोड़ और कोई न उठा सके।

दुष्यन्त : और जो कोई उठा ले तौ।

पहली तपस्विनी : तौ यह तुरन्त साँप बनकर उसे डसता है।

दुष्यन्त : तुमने ऐसा होते कभी देखा है।

दोनों तपस्विनी : अनेक बार।

दुष्यन्त : (प्रसन्न होकर आप-ही-आप) अब मेरा मनोरथ पूरा हुआ मैं क्यों आनन्द न मनाऊँ।

[लड़के को गोद में लेता है।]



दूसर
तपस्विनी : आओ सुब्रता यह सुख का समाचार चल के शकुन्तला को सुनावें वह बहुत दिन से वियोग के कठिन नेम कर रही है।

[दोनों जाती हैं।]

बालक : मुझे छोड़ो मैं अपनी माँ के पास जाऊँगा।
दुष्यन्त : हे पुत्र ! तू मेरे संग चलकर अपनी माँ को सुख दीजो।
बालक : मेरा पिता तौ दुष्यन्त है तुम नहीं हो।
दुष्यन्त : (मुसकाकर) यह विवाद भी मुझे प्रतीत कराता है।

[एक बेनी धारण किये शकुन्तला आती है।]

शकुन्तला : (आप-ही-आप) मैं सुन तौ चुकी हूँ कि सर्वदमन के गण्डे ने अवसर पाकर भी रूप न पलटा परन्तु अपने भाग्य का मुझे कुछ भरोसा नहीं हाँ इतनी आशा है कि कदाचित् सानुमती का कहना सच्चा हो गया हो।
दुष्यन्त : (शकुन्तला को देखकर) अहा ! यही प्यारी शकुन्तला है।

दोहा

नियम करत बीते दिवस दूबर अंग लखात।
सीस एक बेनी धरे बसन धूसरे गात॥
दीरघ बिरहाब्रत सती साधति सुख बिसरात।
मो निरदय के कारने अपने शील सुभाय॥

शकुन्तला : (पछतावे में रूप बिगड़े हुए राजा को देखकर) यह तौ मेरा पति सा नहीं है और जो नहीं है तौ कौन है जिसने रक्षाबन्धन पहने हुए मेरे बालक को अंग लगा के दूषित किया।
बालक : (दौड़ता हुआ माता के पास जाकर) माता ! यह पुरुष कौन है जिसने पुत्र कह कर मुझे गोद में ले लिया।
दुष्यन्त : हे प्यारी ! मैंने तेरे साथ निठुराई तौ बहुत की परन्तु

परिणाम अच्छा हुआ क्योंकि मैं देखता हूँ कि तैंने मुझे पहचान लिया।

शकुन्तला : (आप-ही-आप) अरे मन ! तू धीरज धर अब मुझे भरोसा हुआ कि विधाता ने ईर्षा छोड़ मुझ पर दया की है (प्रकट) यह तौ निश्चय मेरा ही पति है।

दुष्यन्त : हे प्यारी—

दोहा

सुधि आई सब भ्रम मिट्यौ सफल भए मम काज।
धन्य भागि सुमुखी लखूँ सनमुख ठाड़ी आज॥
अन्धकार मिटि ग्रहण कौ दूर होत जब सोग।
तुरत चन्द्र सों रोहिनी करति आय संयोग॥

शकुन्तला : महाराज की—

[इतना कहकर गदगद बानी हो आँसू गिराती है।]

दुष्यन्त :

दोहा

यदपि शब्द जय कंठ में आँसुन रोक्यो आय।
पै न कछ संका रही मैं लीनी जय पाय॥
दरसन तो मुख कौ भयो सुमुखी मोहि रसाल।
बिना लखोटा हू लगे अधर ओठ अति लाल॥

बालक : हे माँ ! यह पुरुष कौन है ?

शकुन्तला : बेटा अपने भाग्य से पूछ।

दुष्यन्त : (शकुन्तला के पैरों में गिरता है)—

दोहा

मन तें प्यारी दूर अब डारि बिलग अपमान।
वा छिन मेरे हिय रह्यो प्रबल कछू अज्ञान॥

तामस बस गति होति यह बहुतन की सुखबार।
फेंकत जिमि अहि जानि के अंध दियो गलहार॥

शकुन्तला : उठो प्राणपति ! उठो उन दिनों मेरे पूर्व जन्म के पाप उदय हुए थे जिन्होंने सुकर्म्मों का फल मेंट मेरे दयावान पति को मुझसे निस्स्नेह कर दिया (राजा उठता है) अब यह कहो कि मुझ दुखिया की सुध तुम्हें कैसे आई ?

दुष्यन्त : जब सन्ताप का काँटा मेरे कलेजे से निकल जायेगा तब सब कहूँगा।

दोहा

देखी अनदेखी करी मैं वा दिन भ्रम पाय।
तेरी आँसू बूंद जो परी अधर पै आय॥
सो पछतायो आज मैं पदमिनि लेहुँ मिटाय।
या आँसू कों पोंछि जो रह्यो पलक तो छाय॥

[आँसू पोंछता है।]

शकुन्तला : (राजा की अंगुली में अँगूठी देखकर) क्या यह वही मुँदरी है ?

दुष्यन्त : हाँ, इसी के मिलते मुझे तेरी सुध आयी।

शकुन्तला : इसने बुरा किया कि जब मैं अपने स्वामी को प्रतीति कराती थी यह दुर्लभ हो गयी।

दुष्यन्त : हे प्यारी ! अब तू इसे फिर पहन जैसे ऋतु के आने पर लता फिर फूल धारन करती है।

शकुन्तला : मुझे इसका विश्वास नहीं रहा तुम्हीं पहने रहो।

[मातलि आता है।]

मातलि : महाराज ! धन्य है यह दिन कि आपने फिर धर्मपत्नी पाई और पुत्र का मुख देखा।

दुष्यन्त : हाँ, आज मेरा मनोरथ सफल हुआ। हे मातलि ! तुम यह

तौ कहो कि इस वृत्तान्त को इन्द्र ने जान लिया था कि नहीं।

मातलि : (हँसकर) देवताओं से क्या छुपता है? अब आओ महात्मा कश्यप आपको दर्शन देंगे।

दुष्यन्त : प्यारी तू पुत्र का हाथ थाम ले मैं तुझे आगे लेकर महात्मा का दर्शन करना चाहता हूँ।

शकुन्तला : तुम्हारे संग बड़ों के सन्मुख जाते मुझे सकुच लगती है।

दुष्यन्त : ऐसे सुभ अवसर पर ऐसा ही करना उचित है—आओ।

[सब घूमते हैं।]

[आसन पर बैठे हुए कश्यप और अदिती दीखते हैं।]

कश्यप : (राजा की ओर देखकर) हे दक्षसुता !

दोहा

है यह तेरे पुत्र कौ रन अगमानी भूप।
नाम जासु दुष्यन्त है कीरति जासु अनूप॥
जाके धनुष प्रताप तें लहिके अब विश्राम।
सोभा ही कों रहि गयो इन्द्र बज्र अभिराम॥

अदिती : बड़ाई तौ इसके रूप ही से दीखती है।

मातलि : (दुष्यन्त से) हे राजा ! ये देवताओं के माता-पिता आपकी ओर प्यार की दृष्टि से ऐसे देख रहे हैं जैसे कोई अपने पुत्र को देखता है आओ इनके निकट चलो।

दुष्यन्त : हे मातलि ? क्या कश्यप और अदिती यही हैं ?

चौपाई

इनहि दुहुन कों ऋषि मुनि धावें। द्वादस रबि के जनक बतावें॥
हैं मरीच सुत दक्षसुता ये। नाती अरु नातिन ब्रह्मा के॥
सुरनायक इनही ने जायो। जो तिरलोकीनाथ कहायो॥
बिधि ते परे पुरुष ओ कोऊ। इनकी कोख अवतर्‌यो सोऊ॥

मातलि : हाँ ये ही हैं।

दुष्यन्त : (प्रणाम कर) हे महात्माओ ! तुम्हारे पुत्र का आज्ञाकारी दुष्यन्त प्रणाम करता है।

कश्यप : बेटा तू चिरंजीव होकर पृथ्वी का पालन करे।

अदिती : बेटा तू रण में अजित हो।

शकुन्तला : मैं भी आपके चरणों में बालक समेत बन्दना करती हूँ।

कश्यप : हे पुत्री—

दोहा

भारत तेरो इन्द्र सम सुत जयन्त उपमान।
और कहा बर देहुँ तुहि तू हो सची समान॥

अदिती : हे पुत्री ! तू सदा पति की प्यारी हो और यह बालक दीर्घायु होकर दोनों कुल का दीपक हो। आओ बैठो।

[सब प्रजापति के सामने बैठते हैं।]

कश्यप : (एक-एक की ओर देखकर दुष्यन्त से)—

दोहा

नारी सती सुत शुद्ध कुल तुम राजन सिरमौर।
श्रद्धा बिधि अरु वित्त सम मिले धन्य इक ठौर॥

दुष्यन्त : हे महर्षि ! आपका अनुग्रह बड़ा अपूर्व है।

दोहा

फूल लगे तब होत फल घन आवे तब मेह।
कारन कारज गति यही तामें नहिं सन्देह॥
पै अद्‌भुत तुम्हरी कृपा देखी मैंने आज।
बर तुमने पाछे दियो पहले पुजयो काज॥

मातलि : प्रजापतियों की कृपा का यही प्रभाव है।

दुष्यन्त : हे भगवन ! आपकी इस दासी का विवाह मेरे साथ गान्धर्व रीति से हुआ था फिर कुछ काल बीते मायके के लोग इसे

मेरे पास लाये उस समय मेरी ऐसी सुध भूली कि इसे पहचान न सका और इसका त्याग करके मैं आपके सगोत्री कण्व का अपराधी बना पीछे अँगूठी देखकर मुझे सुध आई कि कण्व की बेटी से मेरा ब्याह हुआ था यह वृत्तान्त अचरज-सा दीखता है।

चौपाई

लखि सनमुख हाथी जिमि कोई। कहे कि यह हाथी नहिं होई।।
निकसि जाय तब शंका लावे। हाँ कबहूँ कबहूँ ना गावे।।
खोज देखि फिर हाथी जाने। निश्चय भूल आपनी माने।।
याही बिधि गति मो मन केरी। उलटि पलटि लीनी बहु फेरी।।

कश्यप : हे बेटा! जो कुछ अपराध हुआ उसका सोच अपने मन से दूर कर क्योंकि तुझे उस समय भ्रम ने घेर लिया था। अब सुन—

दुष्यन्त : मैं एकाग्रचित्त होकर सुनता हूँ आप कहें।

कश्यप : जब अप्सरातीर्थ पर जाकर मेनका ने शकुन्तला को व्याकुल देखा तो उसे लेकर अदिती के पास आई मैंने उसी समय ध्यान शक्ति से जान लिया कि तैंने अपनी पतिब्रता को केवल दुर्वासा के शाप वश छोड़ा है और इस शाप की अवधि मुँदरी के दर्शन तक रहेगी।

दुष्यन्त : (आप-ही-आप) तौ मैं धर्मपत्नी परित्याग के अपवाद से बच गया।

शकुन्तला : (आप-ही-आप) धन्य है कि स्वामी ने मुझे जान-बूझ नहीं त्यागा परन्तु मुझे सुध नहीं है कि शाप कब हुआ अथवा उस समय बिरह के सोच में बेसुध हूँगी क्योंकि मेरी सखियों ने मुझे जता दिया था कि अपने भरता को अँगूठी दिखा देना।

कश्यप : हे पुत्री! अब तू कृतार्थ हुई अपने पति का अपराध मत समझ।

दोहा

निठुर भयो पति भूलि सुधि तू त्यागी वश शाप।
दई तोहि अब भ्रम मिटें सब बिधि प्रभुता आप।।
छाया परति न मुकर में मैल कछ जो होइ।
पै दीखत है सहज ही जब डार्‌यो वह धोइ।।

दुष्यन्त : महात्मा! यह मेरे वंश की प्रतिष्ठा है।

[बालक का हाथ पकड़ता है।]

कश्यप : यह भी जान लो कि यह बालक चक्रवर्ती होगा।

दोहा

सुखगामी रथ पर चढ्यो उतरि महोदधि पार।
जीतेगो यह वीर नर तीन द्वीप अरु चार।।
किये पसू बस सब यहाँ सर्वदमन भौ नाम।
प्रजा भरण करि होयगो फेरि भरत अभिराम।।

दुष्यन्त : जिसके आपने संस्कार किये हैं उससे हमको किस-किस बड़ाई की आशा नहीं।

अदिती : हे भगवान! शकुन्तला के मनोरथ सिद्ध हुए इसलिए इसके पिता को भी यह वृत्तान्त सुनाना चाहिए और इसकी माता मेनका तौ मेरे ही पास है वह सब जानती है।

शकुन्तला : (आप-ही-आप) इस भगवती ने तौ मेरे ही मन की कही।

कश्यप : अपने तप के बल से कण्व मुनि सब वृत्तान्त जानते होंगे।

दुष्यन्त : इसी से मुनि ने मुझ पर क्रोध न किया।

कश्यप : तौ भी हमें उचित है कि कण्व को मंगल समाचार सुनावें। कोई है रे यहाँ।

[एक चेला आता है।]

चेला : महात्मा! क्या आज्ञा है?

कश्यप : हे गालव! तू अभी आकाश मार्ग होकर कण्व के पास जा और मेरी ओर से यह मंगल समाचार सुना दे कि दुर्वासा का

शाप मिट जाने पर आज दुष्यन्त ने पुत्रवती शकुन्तला पहचानकर अंगीकार कर ली।

चेला : जो आज्ञा।

[जाता है।]

कश्यप : अब पुत्र तुम भी स्त्री-बालक समेत इन्द्र के रथ पर चढ़ आनन्द से अपनी राजधानी को सिधारो।

दुष्यन्त : जो आज्ञा।

कश्यप : और सुन लो—

चौपाई

इन्द्र मेह मुकता बरसावे। यातें तो परजा सुख पावे।।
करि करि यश तुहू बहुतेरे। तुष्ट करे मन देवन केरे।।
या बिधि साधि परस्पर काजू। सो जुग करत रहो तुम राजू।।
दुहू लोक बासी सुख पावें। तुम दोहुन के मिलि जस गावें।।

दुष्यन्त : हे महात्मा, जहाँ तक हो सकेगा मैं इस सुख के निमित्त सब उपाय करूँगा।

कश्यप : कहो पुत्र अब तुम्हें और क्या आशीर्वाद दूं।

दुष्यन्त : जो आपने कृपा की है इससे अधिक आशीर्वाद क्या होगा और कदाचित् आप पूछते ही हैं तो भरत का यह वचन पूरा होने दीजिए—

शिखरनी

प्रजा काजें राजा नित सुकृति पै उद्यत रहें।
बड़े वेदज्ञानी हित सहित पूजें सरसुती।।
उमास्वामी शम्भू जगतपति नीललोहित प्रभू।
छटावें मोहू कों बिपति अति आवागमन सो।।

कश्यप : तथास्तु।

[सब बाहर जाते हैं।]

०००